हमारे जल साधन

लेखक

राम

अनुवादक

अतुल

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

नई दिल्ली

भूमिका

यह पुस्तक उस सामान्य पाठक के लिए लिखी गयी है जो किसी भी तरह से व्यावसायिक रूप से जल से नही जुडा है। यदि जल से जुडा कोई व्यावसायिक इसे पढेगा तो उसे निराश होना पड सकता है।

इस पुस्तक मे मैंने भारत के जल साधनो को सक्षेप मे एक परिप्रेक्ष्य मे रखने का प्रयास किया है। सिंचाई के लिए जल की उपलब्धता पुस्तक का केद्रीय विषय रहा है। वेशक यह विषय हलका प्रतीत होता है, किंतु हमारे लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। हमारा कल्याणमय भविष्य इस वात पर टिका है कि हम उपलब्ध जल के उपयोग मे कितने सफल हो सकते हैं। जल, विद्युत और परिवहन जसे क्षेत्रो मे भी प्रगति अत्यन्त आवश्यक है। इनसे जुडी औद्योगिक और नगर सबधी आवश्यकताओ पर विस्तार से विचार नही किया गया हे। मुख्य विषय से सबधित प्रमुख पक्षो पर प्रकाश डाला गया है। जहा आवश्यक समझा गया है, आकडे दे दिये गये है।

विभिन्न पाठय पुस्तको, समितियो, आयोगो की रिपोर्टो, विचार गोष्ठियो की वार्ताओ और मित्रो के साथ की गयी चर्चा से इस पुस्तक के लिए सामग्री जुटायी गयी है। पुस्तक मे कुछ त्रुटिया निश्चय ही होगी। उन्हे अस्वीकारने का मेरा कोई इरादा नही है।

टाटा इस्टीच्यूट आफ फडामेटल रिसर्च
बबई-5

राम

विषय-सूची

1	नेघ लीला	1
2	गा	10
3	ब्लाजा विष्व	22
4	नितात विपरीत छोर	42
5	समावनाओ की अन्विति	51
6	अमृत	61
7	त्रिशूल और लोनार	73
8	काटा	78
9	महाविपत्ति	81
10	योजना	89
11	अनुसधान और अन्वेषण	94
12	जल मे कौन क्या है	100
13	सम्मेलन	102
14	चुनौती	104

मेघ लीला

एक ही साधन एक ही स्रोत

ताजा जल हमें केवल एक ही स्रोत से मिलता है। वह स्रोत है वर्षा यानी आकाश से गिरने वाला जल, जो अपने आप गिरता है और जिसके लिए किसी को कोई पैसा नही देना पडता।

झीलें, हिमनद, नदिया, चश्मे, कुए, जल के गौण साधन हैं और इन्हे भी वर्षा या बर्फ से जल मिलता है। बेशक इन साधनो के जरिए वर्षा का बहता पानी इकट्ठा हो जाता है, एक जगह से दूसरी जगह पानी पहुच जाता है और उसका तेज बहाव मद्धम पड जाता है। इन कारणो से इनका भी महत्व है, किंतु यह प्रमुख स्रोत नही है। फिर यह स्रोत इतने विशाल भी तो नही हैं। बारिश हुई नही कि यह भी ज्यादा देर नही चल सकते, यानी हमारे आपके जीवन से भी कम जीवन है इनका। हमारे पास केवल वर्षा ही एक ऐसा साधन, एक ऐसा स्रोत है, जो हमेशा चलता रह सकता है। फिर यह है तो हमारे पास काफी मात्रा मे, वर्ना हम साठ करोड न हो पाते।

सारा का सारा देश मे ही

प्राप्त होने वाला लगभग सारा जल अपने देश मे ही मिल जाता है। तिब्बत और नेपाल से बह कर आने वाले जल की थोडी सी मात्रा को छोड कर शेष सारा जल अपने देश मे ही वर्षा से मिल जाता है। हमारी भौगोलिक स्थिति बहुत ही अनुकूल है, चाहे इसके कारण बहुत से सीमा विवादो की दिक्कत भी हमे उठानी पड रही हैं।

पाचवी ऋतु

दुनिया के पास चार ऋतुए है—बसत, ग्रीष्म, हेमत, और शरद। लेकिन हमारे पास उनसे एक अधिक ऋतु है। वर्षा ऋतु। ग्रीष्म और हेमत के बीच की कडी। किंतु यह ऋतु सबसे अलग है। इस ऋतु मे एक ऐसे महा-नाट्य के हमे मूक दशन होते हैं, जो हमारी नियति का महानाट्य है और उसके अभिनेता होते है मेघ।

प्रथम अक

अप्रैल-मई के महीने मे सूरज तपता है पूरा-पूरा दिन। इससे उपमहाद्वीप के उत्तरी पूर्वी भागो के भू-क्षेत्र तप उठते हैं और इससे जमीन के पास वाली हवा गम हो जाती है। गम हवा अपेक्षाकृत हलकी होती है, इस कारण इन क्षेत्रो पर हवा का दाव कम हो जाता है।

इसके विपरीत दक्षिणी गोलाध मे मई-जून सर्दियो के महीने होते है। वहा हवा अपेक्षाकृत ठडी और घनी होती है और इस विस्तृत क्षेत्र पर हवा का अपेक्षाकृत अधिक दाब पैदा हो जाता है।

इस तरह हमसे दक्षिण की ओर उच्चवायु दाब और उत्तर पश्चिम की ओर निम्न वायु दाब बन जाता है। फलस्वरूप हवा बडी तेजी से अरब सागर के पार दौडने लगती है। किंतु कोई नाटकीय बात घटित नही होती। बस होता इतना ही है कि गर्मी असह्य हो जाती हे, ताल तलैया, कुए आदि सूखने लगते हैं और धूल के बगूले आसमान की ओर उठने लगते है। यही वह क्षण होता है जब हम वर्षा के लिए आकुल हो उठते हे।

दूसरा अक

कुछ घटित होता है, ऐसा कुछ जो बहुत ही दुर्बोध होता है। लेकिन क्या घटित होता है, कोई सही नही जानता। अचानक काले और घने बादल न जाने कहा से प्रकट हो जाते है—बिजलिया चमकाते हुए गजन गुजाते हुए।

तीसरा अक

तब आकाश से उतरती है सजीली वर्षा, सुदर और प्रसन्नमुख वर्षा,
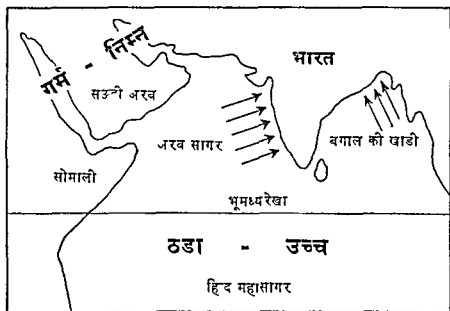
हमारे देश मे वर्षा लाने वाला अदभुत ऋतु चक्र ।

ताप हरती हुई, अमृत बरसाती हुई। हर साल इसी क्षण की हम वडी उम्मीदो के साथ प्रतीक्षा करते है। मौसम की पहली बौछार का आगमन होता है।

जून के पहले सप्ताह मे देश मे वर्षा के आगमन की शुभ सूचना का सदेशवाहक केरल होता है। इसके तुरत वाद पश्चिमी घाट के सहारे-सहारे वर्षा उत्तर की ओर गतिमान होती है और पश्चिम की ओर बढती हुई प्रायद्वीप और फिर मध्य भारत के ऊपर आ जाती है। और एक दूसरी तेज धारा वडी तेजी से बढ कर पश्चिमी बगाल को सरोवार कर डालती है और हिमालय पर्वत शृखलाओ के साथ-साथ बढती हुई, गगा के मैदान पर से घूमती हुई, सिंधु घाटी तक जा पहुचती है। जुलाई के महीने के आते-आते वर्षा पूरे देश मे घूम गयी होती है। अक्सर वर्षा रानी एक छलाग लगाती है, रुक्ती है और फिर अगली छलाग मे आगे बढ जाती है। लेकिन कभी-कभी यह वडे-वडे क्षेत्रो को फलाग जाती है।

भूमि का चप्पा-चप्पा हरियाली से हरा हो जाता है। यहा तक कि चट्टाने भी काई से हरी हो जाती है। ताल तलैया भर जाते है। मच्छरो की

दुगनी से चौगुनी हो जाती है। कोयल की कूक गूंजने लगती है। मेढक टर्राते है, मोर नाच उठते है। विरही प्रेमी-प्रेमिका एक-दूसरे से मिलने के लिए आतुर हो उठते है। इच्छाए प्रवल हो जाती है।

चौथा अक

आखिरकार एक न एक दिन सभी अच्छी चीजा का अत होता है। सितम्बर के आते-आते वरखा का आना कम होता जाता है और वह ठहरती भी बहुत थोडे समय के लिए है। अक्तूबर आया कि फिर वरखा का आगमन दुलभ हो जाता है। सिफ सर्दियो मे वह कुछ विशेप प्रिय स्थलो पर दवे पाव आती और तुरत चली जाती है।

अप्रत्याशित-अनियन्त्रित

हर चचला रूपगर्विता की तरह वर्षा के मन की वात भी कोई नही जानता कि उसका अगला कदम क्या होगा और न ही कोई उस पर किसी तरह का नियन्त्रण रख सकता है। मौजूदा मौसम की स्थिति और उसका रुझान देख और जाच कर कुछ घटा पहले ही वताया जा सकता है कि अगले कुछ घटो के लिए मौसम कैसा रहेगा। मौसम के वारे मे इस तरह की चेतावनी विमानो के लिए काफी काम की होती है, किंतु कृपि के क्षेत्र मे इससे कोई विशेप लाभ नही होता। कृपि के लिए तो जरूरी है कि कम से कम कुछ दिनो पहले मौसम के वारे मे सही-सही पूवसूचना दी जाये। उदाहरण के लिए, हमारे लिए यह जानना जरूरी होगा कि अगले आठ दिनो मे हरियाणा के साथ लगते जिलो मे पाच या इससे ज्यादा सेंटीमीटर वारिश होने वाली है या नही, या अगले हफ्ते या पखवाडे मे मौसम खुश्क रहेगा या नही। यदि मौसम के वारे मे इस तरह की पूवसूचना दी जा सके तो हम उसी के अनुसार खेती की सिंचाई कर सकते है और इसका असर भी बडा जवरदस्त पडेगा। लेकिन अभी इस तरह की पूवसूचना देना सभव नही हो पाया है। इसके कुछ ठोस कारण है। वर्षा एक ऐसी ऋतु चक्र मे सक्रिय, एक-दूसरे पर निभर, अनेक परिवतनशील कारणो पर निभर करती है, जो वडी तेजी से बदलते रहते है। अर्थात् यह चक्र बहुत ही मुक्त, विशाल और जटिल है। यह सच है कि इस क्षेत्र मे अनेक तरीको से काम किया जा सकता है। किन्तु यह सब कागजो पर है, अभी तक इन पर अमल नही किया गया है।

इस दौरान हम एकदम बेबस हैं। बरखा आती है, थोडा रुकती है और चली जाती है और हम उसके बारे मे कुछ नही बता पाते। शायद बाद मे कभी हम बता पाय कि यह सब कैसे होता है।

जाओ अपने खेतो को बोओ। बारिश जरूर होगी।

चूकि हम उसके बारे मे कोई पूर्व सूचना नही दे सकते, इसलिए यह देख कर अस्वाभाविक नही लगता कि किसान खेतो को पानी दे रहा होता है *और दो-एक दिन बाद बारिश भी टपक पडती है।*

अप्रत्याशित का मतलब जरूरी नही कि वह अनियन्त्रित भी हो। वैज्ञानिक ऐसी परियोजनाओ पर काम कर रहे है, जिन मे वे बारिश को जमीन पर कृत्रिम रूप से लाने का प्रयत्न कर रहे है। कृत्रिम रूप से वर्षा कराने के प्रयास को बीजारोपण कहा जाता है। इस तरीके मे बादल मे उचित प्रकार की सामग्री के छोटे-छोटे कण भारी मात्रा मे इस उम्मीद के साथ मिला दिये जाते है कि इन से किसी तरह से जल-कण सघनित होकर वर्षा के रू

नीचे टपक पडे । आम किस्म का नमक, सिल्वर आयोडाइड, सालिड कार्बन डायाक्साइड जैसी सामग्री इस काम के लिए इस्तेमाल की जाती है। प्रयोग की जाने वाली और भी कुछ किस्म की सामग्रिया हैं, जिन मे से कुछ तो बडी ही विचित्र किस्म की है।

इस तरह के प्रयोगो की नाटकीय सफलता के प्रारम्भ मे जो दावे किये गये थे, उनके कोई विशेष परिणाम नही निकले हे । हमारे देश मे भी इस तरह के कुछ प्रयोग किये गये जिनके परिणाम ऊपरी तौर पर तो काफी उत्साह-जनक थे, लेकिन थे सदिग्ध । अधिकाश प्रयोगकर्ताओ द्वारा अब जो दावे किए जा रहे हैं, वे बहुत ही साधारण है। महसूस यह किया जा रहा है कि कुछ विशेष प्रकार के अनुकूल बादलो को बीजारोपित करके लक्ष्य-क्षेत्र मे 10-20 प्रतिशत तक वर्षा मे बढोतरी की जा सकती है, किन्तु हवा जिस रुख बह रही होती है, उस तरफ आगे बारिश कम होती जाती हे । इस तरह के साधारण दावो का समर्थन या खडन करना बहुत कठिन है। कारण यह है कि प्रयोग के निष्कर्ष आकडो पर आधारित होना जरूरी है और प्रयोग किसी भी प्रकार के आग्रह या बाह्य तत्व से मुक्त हो, क्योकि बिना बीजा-रोपण के भी तो वर्षा होती हे । ऐसी स्थिति मे समर्थको और आलोचको दोनो के लिए गुजाइश होती हे ।

कृत्रिम वर्षा कराने की विधि का आधार वैज्ञानिक दृष्टि से ठोस प्रतीत होता है। बीजारोपित जर्रो के गिर्द जल वाष्प के सघनित होने की सभावना होती है और इस तरह बादल मे कुछ अतिरिक्त बूदे पैदा हो जाती हैं। लेकिन वर्षा के लिए बादल के कुछ और घना होने के अलावा भी कुछ चाहिए। यह दूसरी प्रक्रियाए बीजारोपण द्वारा कैसे और किस सीमा तक प्रभावित होती है, जब हम ऐसे प्रश्न पूछने लगते है तो कुछ अनिश्चित बाते समझ मे आने लगती है। चाहे जो कुछ भी हो वास्तविक अनुभव बताता है कि फिलहाल वर्षा मे नाटकीय परिवर्तन नही होने वाले है।

यदि वास्तव मे इस क्षेत्र मे साधारण दोषो के भी कुछ ठोस नतीजे निकल आयें तो वे भी हमारे लिए बहुत महत्वपूर्ण हो सकते हैं। इस सूरत मे वर्षा का वितरण बदलने की उम्मीद की जा सकती है, चाहे वह कितनी ही कम हद तक क्यो न हो। किन्तु इसी परिवर्तन का बडा जबरदस्त असर पडेगा। जरा सोचिए तो, पास के वर्षा की कमी वाले क्षेत्रो मे कुछ अतिरिक्त बादलो को पठाने से क्या कुछ हो सकता है।

वास्तव मे हम दुविधा मे उलझे हुए है। हमारे सामने ऐसा एक क्षेत्र है, जिसमे महत्वपूण विकास की अनेक सभावनाए छुपी हुई है, लेकिन परिणाम बड़े ही अनिश्चित है। हम नही जानते कि हमे प्रयोग के इस क्षेत्र मे पूरी तरह जुट जाना चाहिए या इस तरफ कतई ध्यान नही देना चाहिए। तकनीकी सफलता के बाद ही लागत-प्रभाविता के प्रश्न खडे हो सकते है, *यानी कृत्रिम वर्षा कराने मे जितना धन खर्च होगा उतना उससे लाभ भी* मिलेगा या नही। इसलिए इस क्षेत्र मे अनुसधान के लिए काफी धन लगाने की जरूरत है, हालाकि धन के पूरी तरह से व्यथ हो जाने का खतरा साथ जुडा हुआ है। इन प्रयोगो के लिए वायुयान खरीदने, उन्हे चलाने और तैयार हालत मे रखने की लागत ही सबसे बडी लागत होगी। बाकी तो बुनियादी तौर पर सगठन सबधी प्रयास ही होगे। अतत हमे इन सभी बातो के लिए अर्थ का प्रबध करना होगा ताकि सिद्ध किया जा सके कि यह प्रयोग सफल हो सकते है या नही। अभी तो हमे इतने पर ही सतुष्ट रहना है कि वर्षा न केवल अप्रत्याशित हे, बल्कि अनियत्रित भी।

मन स्थितिया

यायावर, अनियमित, सैलानी, स्नेहमयी, अकरूण, विनाशकारी, क्रूर। वर्षा के व्यवहार को इस प्रकार के कुछ विशेषणो से आभूषित किया जाता है। अक्सर उसके विरूद्ध शिकायतो का अबार लगा होता है। कुछ शिकायते वास्तव मे सही भी होती ह, लेकिन कभी-कभी। लेकिन अक्सर हम उसके व्यवहार मे मामूली से भी फक से उत्तेजना मे आ जाते हैं। इस सबके बावजूद उसका व्यवहार आमतौर पर प्रशसा के योग्य रहता हे, वर्ना हम इतनी भारी सख्या मे न होते जितने आज है।

महत्वपूर्ण आकडे

हालाकि हम पहले से सही-सही यह नही बता सकते है कि किसी खास जगह पर, किसी खास मौके पर, वर्षा क्या करेगी, लेकिन हम निश्चय ही पहले से वर्षा के बारे मे आकडे जरूर दे सकते हैं—क्योकि हमारे पास एक सदी से भी अधिक समय के उसके व्यवहार के लिखित दस्तावेज मौजूद है।

इन दस्तावेजो का सार भी लोगो की स्मतियो मे मौजूद है, जो इनके आधार पर अपनी भविष्यवाणिया करते रहते है। हमारे मौसम विज्ञानियो ने इन दस्तावेजो का परिमाणात्मक अध्ययन किया है और उनके आधार पर कुछ मुख्य लक्षण प्रस्तुत किये है और उन लक्षणो की सभावित व्याख्या भी की है। वे सूक्ष्मतर लक्षणो और परस्पर सबधो का पता लगाने मे भी लगे हुए है, जो मौसम सबधी पूवसूचनाए देने मे उपयोगी सिद्ध हो सकते है।

अभी तक जिन मुख्य लक्षणो का पता लगाया जा चुका है, वे इस प्रकार है

(1) हमारे देश मे एक वहुत वडे भाग मे अधिकाश वर्षा जून से सितम्वर के बीच होती है यानी वर्षा तीन या चार महीने की लहर के रूप मे आती है। फिर यह लहर सभी स्थानो पर यकसा वारिश भी नही करती है। वारिश के कुछेक दौर ही कभी-कभी मौसम की आधी से अधिक वर्षा कर जाते हैं।

(2) *पश्चिमी घाट और हिमालय के निचले इलाको पर वर्षा की भरपूर* कृपा होती है। पश्चिमी राजस्थान और उत्तरी गुजरात सवसे अधिक कगाल हालत मे होते है और लगभग यही स्थिति हिमालय की ऊची चोटियो की होती है।

(3) किसी-किसी जगह एक वप कुछ अधिक वर्षा होती है तो दूसरे वप वहुत कम। जिन इलाको मे औसत वर्षा कम होती है उन्ही मे प्रतिशत परिवतन सबसे ज्यादा होते है। जहा औसत वर्षा 200 से० मी० होती है, वहा वर्षा मे 15 से० मी० के परिवतन से कोई अतर नही पडता, लेकिन जहा 20 से० मी० वर्षा ही औसतन होती है वहा 15 से० मी० के इसी अन्तर से बाढ या सूखे की स्थिति पैदा हो सक्ती है। ऐसी नाजुक स्थितिया शुष्क क्षेत्रो मे होती है।

(4) मौसम की कुल वर्षा मे तो परिवतन होते ही है, साथ ही उनके वितरण मे भी हेरफेर होता रहता है। जून-सितम्वर के मौसम के दौरान ही किसी भी क्षेत्र मे सूखा-बाढ-सूखा चक्र चल सकता है।

ऐसे परिवतन हमारे लिए वडी ही चिंता का विपय है। कारण स्पष्ट है। किंतु हम इस विपय मे कुछ भी नही कर सक्ते सिवाय इसके कि इनका

अध्ययन करते रह और इसके अनुसार अपनी जानकारी मे वृद्धि करते रह। सच यह है कि यदि हमारे देश मे वर्षा का मौसमी और भौगोलिक वितरण कुछ और अधिक समान होता तो हमारा जीवन और भी ज्यादा सहज और सुगम होता। हमारा कृषि उत्पादन बडे स्तर पर सिंचाई-निर्माण कार्यो के बिना भी आज से कही अधिक होता। काश हम किसी तरह से आसाम या कोकण के आसमान पर लदे अतिरिक्त बादलो को राजस्थान या मराठवाडा की तरफ धकेलने या खरीफ के मौसम मे वर्षा के कुछ बादलो को रबी मौसम के लिए बचा कर रखना जानते। यह बात आज की प्रौद्योगिकी के बूते से बाहर है। इसलिए बादलो पर स्वामित्व और आर्थिक क्षमता के सवाल घेरे से बाहर की चीजे है।

असमान वर्षा एक और तरीके से भी हमे परेशानी मे डालती है। वर्षा के मौसम मे हमारे नदी नालो मे जरूरत से कही अधिक पानी आ जाता है और बाद के मौसमो मे इनमे बहुत कम पानी रह जाता है। फलस्वरूप साधारण किस्म की नहरे (और छोटे जलाशय) हमारे यहा काफी नही, क्योकि यह आमतौर पर ऐसे नदी-नालो के जल को नियत्रित, उसके जल का उपयोग कर सकती है जिनमे बहाव अपेक्षाकृत एकसा होता हे। हमे बडे-बडे जलाशय और इस कारण बडे-बडे बाध बनाने पडते है ताकि वर्षा के मौसम मे बाढ की सूरत मे बरसने वाले अतिरिक्त जल को भारी परिमाण मे इकट्ठा किया जा सके और बाद के मौसम मे उसका उपयोग किया जा सके। आमतौर पर इस तरह के जलाशय और बाध बनाना काफी कठिन होता है और महगा भी पडता है। किन्तु इनमे से बहुत से बनाये जा सके है और खूब काम भी दे रहे है। और यही इसानी सूझबूझ और कोशिश बडे प्रभावकारी तरीके से सामने आती है।

2
गगा

चाहे गगा हम तक भगीरथ के प्रयासो से पहुची या यह साधारण भूगर्भीय प्रक्रियाओ का परिणाम है, लेकिन इतना जरूर सही है कि गगा हमारे लिए पवित्र नदी है। बहते हुए ताजा जल से भरे सभी नदी-नाले हमारे लिए पवित्र है। वास्तव मे बहुत सी नदियो के नामो के आगे या पीछे गगा शब्द आता है, किंतु परपरा यही है कि यह रुचिर और मुखर नाम उस सबसे बडी नदी के लिए सुरक्षित है, जो उत्तरी मैदानो मे से हिमालय की तलहटी के साथ-साथ बहती है।

वर्षा ऋतु बीत जाने के बाद भी हमारी बहुत सी नदियो मे काफी मात्रा मे जल बहता रहता है। वे सिंचाई, ऊर्जा, परिवहन और उद्योग के लिए बहुत ही आवश्यक है। इन नदियो के किनारे सुदर स्थापत्यकला से मडित नगर स्थित है।

जल-उपलब्धि

हमारा कल्याण यानी हमारी समृद्धि और सकुलता सिंचाई के विकास पर ही निभर करेगी। इसलिए यह जानना हमारे लिए बहुत ही आवश्यक है कि हमारे पास कुल जल कितना है और इसमे से कितने जल का हम आसानी से सिंचाई के लिए उपयोग कर सकते हैं। शुरू मे हम यह मान कर चल

सकते हैं कि हमे मिलने वाला कुल जल (जो कभी भी बारहमासी सिंचाई के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है) वही है, जो हमारी नदियो मे बहता है। यह कितना है ? इस प्रश्न का जवाब देने के लिए सब से पहला काम यही होगा कि इसे माप लिया जाये। किन्तु किसी भी नदी या नाले का बहाव मापना इतना सहज या सुगम नही। इसके लिए नदी के निर्दिष्ट हिस्से मे विभिन्न गहराइयो वाले स्थलो पर पानी के वेग को मापना पडेगा। मापने के लिए उन स्थलो पर वेगमापी और अन्य उपकरणो से युक्त विशेष नावो की जरूरत होगी। यह काम बहुत ही श्रमसाध्य और कठिन है। समय भी इसमे बहुत लगेगा। इसीलिए अभी तक यह पूरा नही किया गया है। इसे जहा का तहा रहने भी दे तो एक और भी तरीका है, जो जरा अपरोक्ष है और जिसमे हमारे प्रश्न का अनुमानित उत्तर मिलता है।

वर्षा के आकडो (भारतीय मौसम विज्ञान विभाग द्वारा प्रदत्त) के आधार पर, किसी भी निर्दिष्ट प्रदेश मे वर्षा के रूप मे कुल कितना जल गिरा, इसका हिसाब लगाया जा सकता है। वर्षा के रूप मे गिरा कुल जल जमीन से वाष्प के रूप मे उड जाता है और कुछ जलाश पौधे भाप के रूप मे छोड देते है। शेष जल नदी मे मिलना चाहिए, जो इस प्रदेश मे वर्षा के रूप मे गिरा है। इस तरह जितना जल वाष्प के रूप मे उडा और जितना पौधो ने वातावरण मे छोडा, यदि इसका परिकलन किया जा सके तो हम वर्षा के कुल जल मे से इसे घटा सकते है और तब हमे नदी मे जल-विसजन का मूल्य प्राप्त हो सकता है। इसका परिकलन सबसे पहले श्री खोसला[1] ने किया था।

हमारे देश मे लगभग 3,300 लाख हेक्टयर भूमि क्षेत्र ऐसा है, जिस मे वार्षिक औसत वर्षा एक मीटर से जरा सी अधिक होती है। इस प्रकार

1 हाल के वर्षों मे डा० ए एन खोसला ने हमारे देश में जल साधन के क्षेत्र म उल्लेखनीय योगदान किया है। हालाकि वे अब इस क्षेत्र में प्रमुख नहीं है किंतु फिर भी हमारी जलसपदा के उपयोग और मूल्याकन के मामले में हमारी साच उनके विचारा और उपलब्धियो से निरन्तर प्रभावित होती रही है। व हमारे अभि यांत्रिकी के लिए निरतर प्रेरणा के स्रोत रहे ह।

प्रतिवर्ष 4,000 लाख हेक्टेयर मीटर (एम एच एम)[1] जल हमें मिलता है। इस में से वाष्पीकरण और पौधों द्वारा उच्छ्वसित जल की मात्रा घटानी होगी।

खोसला साहब का तर्क था कि पौधों द्वारा उच्छ्वसन और भूमि द्वारा वाष्पन भूमि के निकट की वायु के तापमान पर निर्भर करता है। इसलिए किसी भी क्षेत्र में मासिक औसत तापमान उस क्षेत्र में जल के मासिक क्षय (जलवाष्पीकरण के रूप में) से किसी तरीके से जुड़ा होना चाहिए। इस सूत्र के अनुसार उन्होंने हर क्षेत्र के लिए अलग-अलग वाष्पीकरण और पौधों द्वारा जल उच्छ्वसन की मासिक मात्रा का परिकलन किया। बारह महीने के मूल्य को जोड़ कर उन्होंने हर क्षेत्र के लिए वाष्पीकरण और पौधों द्वारा उच्छ्वसन का वार्षिक मूल्य मालूम किया। सभी प्रदेशों के परिणामों को जोड़ कर उन्होंने हिसाब लगाया कि पूरे देश में से हर वर्ष वाष्प के रूप में 230 एम एच एम पानी वायुमंडल में वापिस चला जाता है। इस तरह देखा जा सकता है कि हमारे देश में बरसने वाले जल का आधे से अधिक हिस्सा (400 एम एच एम में से 230 एम एच एम) प्राकृतिक रूप से वायुमंडल में चला जाता है। अनुमान है कि शेष 170 एम एच एम जल प्रतिवर्ष नदियों द्वारा समुद्र में बहा कर ले जाया जाता है और यह भी अधिकतर वर्षा के मौसम में। 4०0 एम एच एम वर्षा जल को जो दो भागों, (अर्थात् वाष्पीकरण और पौधों द्वारा उच्छ्वसन =230 एम एच एम और नदी विसर्जन =170 एम एच एम) में बांटा गया है। पता नहीं कि यह एकदम सही है या नहीं, लेकिन लगभग सही अवश्य है। खोसला साहब को यह उलटा तरीका इसलिए अपनाना पड़ा था, क्योंकि नदी विसर्जन को सीधे मापने का कोई तरीका उपलब्ध नहीं है। उनके बाद से कुछ मापें की गयी हैं। माप के यह आंकड़े केंद्रीय जल आयोग द्वारा इकट्ठे किये गये हैं। इनसे पता चलता है

1 एक हेक्टेयर मीटर जल का वह आयतन है, जो एक हेक्टेयर क्षेत्र को एक मीटर गहराई तक भर देगा। एक मिलियन हेक्टेयर मीटर दस लाख हेक्टेयर क्षेत्र को एक मीटर गहराई तक भर देगा। यह काफी बड़ी इकाई है। यह 10^{13} लीटर या 10^{10} घन मीटर (टन) के बराबर है।

कि वास्तविक नदी-वहाव शायद खोसला साहब द्वारा परिकलित वहाव से अधिक परे नही है। इस तरह हम कह सकते है

वर्षा-जल = वाष्पन और पौधो द्वारा उच्छवसन + नदी विसजन
यानी 400 एम एच एम = 230 एम एच एम + 170 एम एच एम

इस तथ्य का उल्लेख वाद मे किया जायेगा कि 170 एम एच एम नदी-वहाव के दो भाग होते है यानी

(क) भूमि की सतह से 110 एम एच एम का सीधा वहाव।
(ख) 60 एम एच एम जल का भूमि के भीतर रिसना, जो वाद मे नदियो मे ही वह आता है।

भाग (क) जल वर्षा के तुरत वाद नदी मे वह जाता है या वर्फ के रूप मे जमने के बाद पिघल कर वहता है।
भाग (ख) जल धरती के भीतर धीरे-धीरे वहता रहता है और वर्षा ऋतु बीत जाने के काफी अर्सा वाद नदियो मे आ मिलता है।

एक दृष्टिकोण

170 एम एच एम नदी का जल सिंचाई के लिए हमारे पास उपलब्ध है। सोचने पर यह जलराशि बहुत विशाल लगती है। समुद्र मे वह जाने देने के बजाय इस समूचे जल के इस्तेमाल की हम व्यवस्था कर सकते है। इससे प्राकृतिक सतुलन मे क्रान्तिकारी परिवर्तन आयेगा, जो स्पष्ट ही हमारे पक्ष मे होगा। वास्तव मे हमने प्राकृतिक सतुलन मे कुछ सीमा तक पहले ही सशोधन कर लिया है। हमने लगभग 40 एम एच एम वर्षा के जल (30 एम एच एम नहरी जल, 10 एम एच एम कूप जल) का सिंचन-कार्यो के लिए उपयोग कर लिया है और नदियो मे केवल 130 एम एच एम जल ही वह जाने के लिए छोडा है। हम इस सारे के सारे जल का उपयोग कर सकते है। हम 40 एम एच एम वर्षा के जल का अपनी खेती वाली भूमि के 25 प्रतिशत भाग की सिंचाई मे उपयोग कर सके हैं। 170 एम एच एम वर्षा जल से खेती योग्य सारी भूमि की सिंचाई की जा सकती है। सिंचाई के अलावा

इससे और भी लाभ भी उठाए जा सकते हैं। हम जानते हैं कि सिंचाई में लगने वाला लगभग सारा जल पौधों की उच्छवसन क्रिया द्वारा वायु में छोड़ दिया जाता है। पौधे वायुमडल मे अपनी सास द्वारा इसे छोड देते है। आज 270 एम एच एम जल (230 एम एच एम प्राकृतिक रूप से + 40 एम एच एम सिंचाई से) वाष्पन-उच्छवसन से वातावरण मे चला जाता है। यदि 400 एम एच एम जल इसी प्रक्रिया से हवा मे मिलेगा तो वायु मे आद्रता काफी सीमा तक बढ जायेगी। सभावना है कि इससे वर्षा के परिमाण मे भी वृद्धि होगी। इससे कृत्रिम तरीको से जल-चक्र की गति बढाने का सभावना और उजागर हो जाती है। निस्सदेह यह अभी एक अटकल है। किन्तु एकदम बेतुकी अटकल नही। इसके बारे मे हम और अधिक विचार नही करेंगे।

एक अन्य दृष्टिकोण

आज हमारी जो सीमाए हैं, उन्हे देखते हुए हम इससे अधिक जल का उपयोग नही कर पायेगे। 70-80 एम एच एम जल के विकास की सीमा है जो शायद चरम बिंदु है। हमारे पास इससे अधिक की छूट नही है। सीमाए ता है ही, लेकिन इससे आगे जाना शायद उचित भी नही होगा। हो सकता है *कि समुद्र में नदियो द्वारा जल विसजन के परिमाण मे बहुत अधिक* कटौती परिस्थितिकीय दृष्टि से वाछनीय न हो। एक निश्चित सीमा से अधिक समुद्र मे नदी जल के विसजन को रोकने से एक समय बाद मिट्टी क्षारीय हो सकती है। इसलिए 170 एम एच एम जल का सिंचाई के लिए सभावित उपयोग मात्र एक सैद्धातिक उच्चतम सीमा है। व्यवहारिक दृष्टि से उच्चतम सीमा इससे काफी नीचे है।

अलभ्यता

अपनी नदियो मे बहने वाले कुल जल की अपेक्षा केवल उसके एक भाग को ही सिंचाई के लिए उपलब्ध कराया जा सकता है। इस तथ्य के पीछे बहुत से व्यावहारिक कारण है।

मुख्य कारण इस बुनियादी तथ्य मे निहित है कि वर्षा और फलस्वरूप नदी

प्रवाह समय और काल मे असमान रूप से विभाजित है। शुष्क मौसम मे सिंचाई की चरम आवश्यकता के समय नदियो मे अधिक जल नही रहता है। वर्षा के मौसम मे सिंचाई की न्यूनतम आवश्यकता के समय नदियो मे

तालिका 1

	नदी घाटी	वार्षिक विसजन (एम एच एम)	सुगमता से उपयोज्य (एम एच एम)	कठिनाई से उपयोज्य (एम एच एम)
हिमालय स्रोत	गगा	50	20	30
	ब्रह्मपुत्र	40	5	35
	सिंधु	8	5	3
पश्चिम की ओर बहने वाली नदिया	नमदा ताप्ती साबरमती आदि पश्चिमी घाट की नदिया	30	7	23
पूर्व की ओर बहने वाली नदिया	गोदावरी कृष्णा कावेरी महानदी आदि	40	35	5
मरूस्थली नदिया	लूनी घग्घर	2	1	1
	कुल	170	73	97

काफी जल रहता है। वर्षा के मौसम मे इस तरह व्यथ जाने वाले जल का उपयोग करने की अपनी क्षमता बढाने का हमे प्रयत्न करना चाहिए। इस सिलसिले मे हमारे पास तीन विकल्प है

(1) इस जल को बाद मे उपयोग के लिए एकत्र किया जाये।
(2) इस जल को किसी दूरस्थ प्रदेश की तरफ मोड दिया जाये, जहा इसकी तुरन्त आवश्यकता हो।
(3) खेती के नये तरीको से स्थानीय खरीफ की फसल के लिए इस जल का उपयोग वढाया जाये।

इन तीन विकल्पो से ही आजकल काम लिया जा रहा है, किंतु इतने बडे स्तर पर नही। फलस्वरूप वर्षा ऋतु मे नदियो का काफी जल समुद्र मे वह जाता है। इतना होने के बावजूद कुछ नदियो के जल प्रवाह का पूरा उपयोग किया जा सकता है। सतलुज, व्यास और कावेरी नदियो का समस्त जल काम मे ले आया गया है, जबकि रावी, नमदा, ताप्ती, कृष्णा, गोदावरी और दूसरी अनेक नदियो के जल का शीघ्र ही पूरा उपयोग किया जा सकेगा। किंतु देश की दो सबसे बडी नदियो, गगा और ब्रह्मपुत्र, का जल अभी भी सबसे बडी चुनौती बना हुआ हे और इसी मे बडी सभावना और अवसर छुपे हुए है। इस समस्या के बारे मे सरसरी जानकारी के लिए तालिका। देखे। तालिका मे दी गई सख्याए सुनिश्चित रखने का विशेप प्रयत्न नही किया गया है, किंतु उनसे एक परिप्रेक्ष्य अवश्य मिलता है। हमे पता चलता है कि ब्रह्मपुत्र, गगा और पश्चिमी घाट की अनेक छोटी-छोटी नदियो के जल एक या अनेक कारणो से बाधना कठिन है।

ब्रह्मपुत्र की घाटी अधिकतर पहाडी है और इसमे भूकप आते रहते हैं। गगा और हिमालय श्रृखला के भारतीय भाग मे वहने वाली इसकी उत्तरी शाखाओ के पानी को बाधने के लिए उपयुक्त स्थल बहुत से नही हैं। वैसे नेपाल मे ऐसे कुछ उचित स्थल मौजूद हैं जहा निर्माण काय करने पर दोनो देशो को लाभ हो सकता है।

नदियो के जल को बाधना जटिल काय है। मात्र तकनीकी पक्ष ही नही, आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक पक्षो का भी इसमें विशेप ध्यान रखना पडता है।
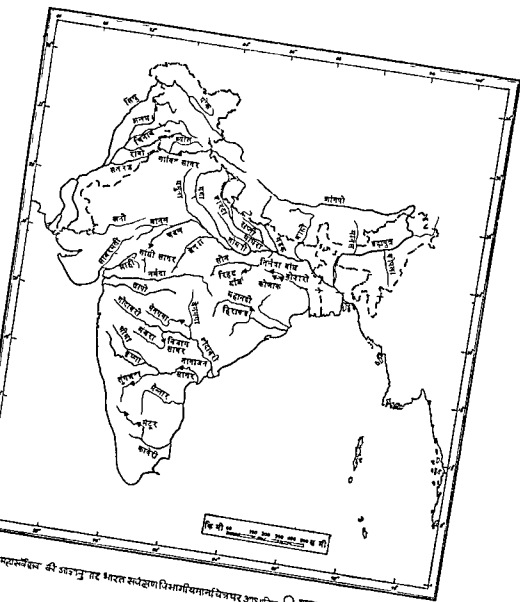
महासर्वेक्षक की आज्ञानुसार भारत सर्वेक्षण विभागीय मानचित्र पर आधारित

अपेक्षाकृत कम ऊँचाई वाले बाध तक के लिए जलाशय का आकार (यानी बाधे गये जल का आयतन) काफी बडा होना चाहिए। इसका मतलब हुआ कि गहरी और बडी तथा अपेक्षाकृत सपाट घाटी मौजूद होनी चाहिए। जलाशय की चट्टानी दीवारें इतनी मजबूत होनी चाहिए कि वे पानी का दाव सह सकें और उनमे पानी रिसे भी नही। बाध स्थल पर गहरी द्रोणी भी होनी चाहिए ताकि बाध अधिक लबा न पडे और फलस्वरूप अधिक लागत से भी बचा जा सके। प्रस्तावित जलाशय स्थल पर आबादी भी कम होनी चाहिए ताकि वहा के विस्थापितो को फिर से बसाने की समस्या गभीर न हो जाये। ऐसी बहुत सी बातें स्थल के चुनाव को सीमित करती है। इसके अलावा अपेक्षाकृत बडे आकार के जलाशय केवल पहाडियो के बीच ही बनाये जा सकते है। इस कारण पहाडियो में होने वाली वर्षा से मिलने वाले जल को ही बाधा जा सकता है। साथ ही मैदानो मे होने वाली वर्षा के जल का भी इस्तेमाल करना होगा (जैसा कि नहरो और बाढ-सिचाई में)। सौभाग्य से यह तरीका अब और अधिक सुकर होता जा रहा है। वर्षा ऋतु मे ही धान की सिंचाई की माग अब बढती जा रही है। इस दिशा मे केवल अब इतना ही प्रयत्न करना बाकी रह जाता है कि नहरो का जाल बिछाया जाये। यह नहरे केवल वर्षा ऋतु मे ही चलें। चूकि यह नहरें केवल खरीफ की फसलो की सिंचाई करेंगी, इसलिए राजस्व की दृष्टि से यह सुझाव इतना लाभकर शायद न लगे। किंतु इसमे लाभ-लागत का अनुपात काफी अच्छा है। इस तरह गगा के जल के उपयोग को तालिका में दिए गये परिमाण से आगे बढाया जा सकता है।

पश्चिमी घाट से निकल कर बहने वाली छोटी नदियो के जल के उपयोग का मामला इस बात से और जटिल हो गया है कि घाट के पहाडो की खडी ढाल का रुख अरब सागर की ओर है। इस तरह की छोटी-छोटी नदियो के द्वारा वर्षा का पानी बडी तेजी से बह जाता है और भारी वर्षा के बावजूद कोई बडी नदी नही बन पाती। इसलिए घाट क्षेत्र मे हम केवल छोटी-छोटी परियोजनाए ही हाथ मे ले सकते है। इन परियोजनाओ पर भी वही प्रतिबध लागू होंगे जिनका उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। इसके अलावा केवल एक कम चौडाई वाली तटवर्ती पट्टी (कोंकण) ही हमें मिलती है, जहा पानी को सिंचाई के लिए रोका जा सकता है। किंतु इस क्षेत्र में भी नहर,

विशाखन नहरे और वाहिकाए काटना इतना आसान नही।
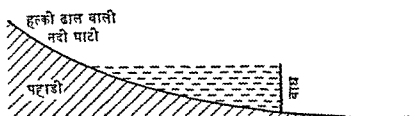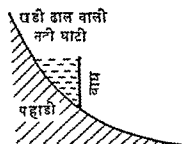
जल को किफायत से बाधने के लिए खडी ढालो वाली नदी घाटियां कम उपयुक्त होती हैं।

इस तरह लगता यह है कि बहुत थोडे समय मे (कुछ दशको मे) हम मौजूदा 40 एम एच एम जल से 80 एम एच एम जल तक सिंचाई का परिमाण बढा सकते हैं। आशा है कि शेष 90 एम एच एम का भी काफी बडा हिस्सा, प्रौद्योगिकी मे विकास होने पर, सिंचाई के लिए उपलब्ध हो जायेगा। इसी तरह सिंचन जल का महत्व भी बहुत बढ जायेगा। दोनो ही बातें होना निश्चित है। सिंचन जल का महत्व तो निश्चय ही बढेगा किंतु इस समय हमे यह नही पता कि शेष 90 एम एच एम जल का उपयोग किस तरह किया जायेगा। इस विषय मे हम गभीरता से सोच या विचार-विमर्श तक भी नही कर रहे हैं। ब्रह्मपुत्र के अतिरिक्त जल को पश्चिमी और दक्षिणी भारत के क्षेत्रो मे लाने की आवश्यकता होगी। इस कार्य मे इंजिनियरी कौशल और उत्कट सूझ-बूझ का सहारा लेना होगा। किसी भी नदी के जल का उपयोग करने के लिए हमे उसकी निजी विशेषता को जानना और मानना पडेगा। साथ हमे यह भी नहीं भूलना चाहिए कि सिंचाई

जल बहुत सस्ते मे उपलब्ध कराना होगा, यानी इतना सस्ता कि कौडिया के मोल पडे। इसलिए कल्पना शक्ति से काम लेते समय योजना की सुकरता का भी ध्यान रखना चाहिए।

भ्रामक औसत और निरर्थक जोड

एक-दूसरे से काफी भिन्न सख्याओ के औसत अक्सर बहुत ही भ्रामक प्रभाव पैदा करते हैं। उदाहरण के लिए, 200 सें० मी० और 20 सें० मी० वर्षा का औसत 110 सें० मी० हुआ, जो पूरी अनुकूल स्थिति का द्योतक है। किंतु 20 सें० मी० और 200 सें० मी० वर्षा से 110 सें० मी० वर्षा के परिणाम प्राप्त करना आसान बात नही। 20 सें० मी० वर्षा का अर्थ हुआ सूखा, जबकि 200 सें० मी० वर्षा का मतलब सीधे बाढ है। औसत निकालने की इस विधि मे जो कमिया हैं, उन्हे नजरअदाज न करते हुए एक पृष्ठ आधार मालूम करने के लिए हम इन दोनो सख्याओ को एक साथ जोड देते है। वास्तव मे हुआ यह है कि हमने एक-दूसरे से भिन्न सख्याओ का औसत और योग निकालने के लिए उन्हे एक साथ जोड दिया है। ऐसा हम ने सभावित या अनुमान लगाने के लिए किया, जो जरूरी नही कि निकट भविष्य मे सुकर भी हो। किसी भी परियोजना की सुकरता मालूम करने के लिए उसके सभी पहलुओ की बारीकी से छानबीन की जानी चाहिए। यह काम विशेषज्ञो का है। सौभाग्य से हमारे पास इस प्रकार के विशेषज्ञ पर्याप्त सख्या मे है। वे विकास परियोजनाओ पर काम करने के लिए हमेशा तत्पर रहते है और बडे उत्साह से काय हाथ मे लेते है। उनमे से कुछ चुनौतीपूर्ण कार्यो पर काम करना बेहतर समझते है। बेशक अडचनें और कठिनाइयाँ तो मौजूद रहती है।

अडचनें

इस मामले मे सबसे बडी अडचन साधनो के अभाव की है, जिसका मतलब हुआ कुशल कार्मिको, सामग्री और मशीनो का अभाव। यह तीनो ही साधन अपने देश मे ही उपलब्ध हैं, किंतु प्रचुर सख्या मे नही। उनकी अग्रताए तय है और इसके अलावा कुछ और बदिशे भी है। इसका यह मतलब नही कि हमारे हाथ मे अब कोई परियोजना ही नही। पिछले दो

दशको मे पूरे किये गये सिंचाई-कार्यो के कारण ही हमारे यहाँ खाद्यान्न का उत्पादन दुगना हो गया है। अनेक परियोजनाओ पर काम चल रहा है और अनेक पर काम पूरा होने वाला है। कुछ नई परियोजनाओ पर विचार किया जा रहा है और उनकी पूरी तरह से पडताल की जा रही है। इस मौके पर सबसे बडी जरूरत अग्रताओ म परिवतन और कुछ निष्क्रियता दूर करने की है। दोनो ही के बारे म कुछ करने की चेष्टा की जा रही है।

फिर कुछ राजनीतिक अडचनें भी हैं। किंतु उस सामाजिक दबाव के सामने यह अडचनें अपने-आप दब जायगी जो सिंचाई के तेजी से विकास के पक्ष म निरतर बढ रहा है। यह दबाव इसलिए भी बढ रहा है क्योकि हम अपने लगभग आधे भौगोलिक क्षेत्र को पहले ही खेती के नीचे ला चुके हैं। चूकि इससे अधिक क्षेत्र खेती के नीचे लाने की सभावनाए सीमित हैं इसलिए हम उपज को बढाने के तरीको पर काम करना होगा। उपज को बढाने के लिए सब से अधिक महत्वपूर्ण निवेश जल ही है। इसका मतलब हुआ सिंचाई की सुविधाए बढाना। सौभाग्य से हम ऐसा करने म सक्षम हैं। अभी विकास की सभी क्षमताए हमने चुका नही डाली। सक्षेप मे हम जो काम आज कर रहे हैं, बस हम उसको जरा और ज्यादा करना है। अर्थात जहाँ भी सभव है वही नदियो और नदो पर बाँध बना कर उनके जल को नहरो मे मोडना होगा और जलाशय तथा तालाब बनाने होगे। प्रतिवर्ष 10-20 लाख हेक्टे-यर भूमि को खेती के नीचे लाने की योजना है। प्रतिवर्ष बढने वाली जन-सख्या को केवल भोजन देने के लिए इतना करना जरूरी है। इस योजना मे जरा सी तेजी से आसन्न निर्भरता सहज निर्भरता मे बदल सकती है। गति को पहले जैसा ही कायम रखा जा रहा है।

3

ख्वाजा खिज्र

अगर हम जमीन मे गढ्ढा खोदें तो हमे सबसे पहले सूखी मिट्टी की हलकी सी परत मिलेगी, इसके बाद इसके कई मीटर नीचे कुछ गीली मिट्टी मिलेगी। अगर इससे आगे भी खुदाई करते जायें तो हमे ऐसी मिट्टी मिलेगी जिसमे से पानी चू रहा होगा। उस जगह गढ्ढे मे पानी इकट्ठा होने लगेगा। जिस गहराई पर पानी इकट्ठा होने लगता है, उसे सोता-सतह या अतर्भौम जल-स्तर कहते हैं। इस गहराई से आगे मिट्टी के रध्र जल से पूरी तरह से भरे होते है उनके बीच मे जरा सी भी हवा नही होती। अगर हम और गहरे खोदते चले जायें तो अत मे कठोर चट्टान तक जा पहुँचेंगे, जिसके आगे कोई खाली जगह नही होगी और जल भी नही होगा।

ऊपर जो बात बतायी गयी है, आमतौर पर सभी जगह ऐसा ही देखने मे आता है। बेशक विभिन्न सस्तरो की गहराई और मोटाई मे काफी अतर होता है। कुछ स्थानो पर, वास्तव मे देश के आधे भाग मे, मिट्टी की ऊपरी परत बहुत ही पतली है और कुछ ही मीटर या इससे कम गहराई पर चट्टान आ जाती है। इस क्षेत्र को 'कठोर चट्टानी क्षेत्र' कहते है। कठोर चट्टानो मे, विशेषकर कम गहराइयो पर, कुछ पानी हो सकता है या आमतौर पर होता है। अधिकतर चट्टानो मे दरारे, छिद्र या कटाव होते है, जिनमे वर्षा होने पर पानी भर जाता है। कभी-कभी मौसम की वजह से चट्टानो के टूटने से उनमे छेद हो जाते हैं। यह छेद वाली खाली जगहे, पानी आने पर उससे भर जाती है। बलुआ चट्टानो की बनावट ही ऐसी

होती है कि उनमे रध्र होते हैं और उनमें बड़ी आसानी से पानी इकट्ठा हो सकता है। किंतु सभी बलुआ पत्थर एक जैसे रध्र वाले नही होते। कई बहुत ही सग्रथित होते है।

चूने का पत्थर बहुत ही अनूठा होता है। चूने के पत्थर की कुछ किस्मे ऐसी होती हैं जिन पर वर्षा का जल बडी आसानी से असर डालता है। इसलिए ऐसे चूने पत्थर की चट्टानो मे वरसो से बहते पानी से तरह-तरह के आकारो और शकलो की गुफाए-कदराए बन जाती हैं। यदि जल पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध हुआ तो पूरी चट्टानो के रध्रो मे पानी भर सकता है। इस किस्म की चट्टानो मे ही हम जल की जमीदोज धाराए या पानी से भरे बडे बडे गढ्ढे मिलने की उम्मीद रख सकते है। यदि इस तरह चट्टानो का जमाव (छिद्रित चूने का पत्थर) समुद्र के निकट हुआ तो उसका भूगर्भ हिस्सा भारी मात्रा मे ताजा जल समुद्र मे विसर्जित कर सकता है। किंतु इस सबध मे हमे विशेष चिंतित होने की आवश्यकता नही, क्योकि हमारे देश मे जिस क्षेत्र मे चूने के पत्थर की चट्टानें हैं, वह बहुत ही छोटा क्षेत्र है और समुद्र से काफी दूर है। भारत के अधिकाश क्षेत्रो मे भूमि के ऊपर दिखने वाली नदियो और झीलो की तरह भूमि के भीतर जल की कोई बहती धारा या झील नही है। जब हम अपने देश मे भूमिगत जलाशय की बात करते है तो हम मिट्टी के रध्रो या चट्टानो की दरारो मे एकत्र जल की बात कर रहे होते हैं। जब हम कुओ और बिजली के कुओ से पानी निकालते है तो यही जल उनमे रिस-रिस कर आता रहता है।

उत्तरी मैदानो (सिंधु और गगा की घाटियो) मे जमीन पर कछारी मिट्टी की मोटी परत जमी है, जो अपने रध्रो मे पानी की भारी मात्रा एकत्र कर सकती है। मिट्टी के कुल घनत्व का 10 से 40 प्रतिशत हिस्सा खाली छिद्रो से युक्त होता है, जिसमे पानी भर जाता है। इसकी तुलना मे चट्टान मे छिद्रो और दरारो मे भरे जल का घनत्व आमतौर पर बहुत कम होता है।

हमारे देश का आधा भाग बसाल्ट (चीनी मिट्टी), स्फटिक और आग्नेय चट्टानो से ढका है। इनमे आमतौर पर बहुत कम मात्रा मे पानी एकत्र हो पाता है। किंतु अक्सर इतने जल से भी काम चल जाता है। चाहे चट्टानें किसी भी तरह की हो भूमिगत जल हर जगह मिल सकता है और मिलता भी है। किंतु एक स्थान से दूसरे स्थान का भूमिगत जल अपनी प्रचुरता, मोता

किस्म मे भिन्न होता है। इसके ठोस कारण हैं। उन्हे समझ लेना चाहिए। मात्र ज्ञानवधन के लिए नही, बल्कि भूमिगत जल के हमारे जीवन का एक महत्वपूण अग होने के नाते। बेशक कोई व्यक्ति निजी तौर पर नदी पर बाध बाँधने या नहर खोदने मे असमथ हो, किंतु वह अपनी जमीन मे कुआ तो खोद ही सकता है और उसके जल का उपयोग कर सकता है। इससे बडा वरदान और क्या हो सकता है और यह अन्य साधनो के मुकाबले मे है भी भरोसे के काबिल। किंतु इसकी भी सीमाए हैं। इसलिए स्थिति को सही-सही समझना बहुत ही जरूरी है।

स्रोत

यदि हम भूमि पर पानी डाले तो हम देखेंगे कि वह मिट्टी के भीतर चला जाता है। इसी तरह वर्षा के पानी को भी हम जमीन के भीतर चले जाते देख सकते है। इसके अलावा हम यह भी अक्सर देखते है कि वर्षा के बाद *कुओ के पानी का स्तर ऊचा हो जाता है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि वर्षा* का पानी ही भूमिगत जल का वास्तविक स्रोत है। यह अनुसधान का विषय है कि अतभौम जलस्तर तक वर्षा का जल किस तरह पहुचता है। किंतु हम इस तथ्य को मोटे तौर पर पहले ही समझ चुके है। इसमे कोई महान रहस्य निहित नही है।

अतस्राव

सैद्धातिक रूप से एक बडा प्रश्न यह है कि वर्षा का कितना जल भूमि से तुरत नदियो मे चला जाता है और कितना भूमि के भीतर रिस जाता है? मिट्टी के भीतर चले जाने वाले जल का कितना अश मिट्टी की ऊपरी परत से वाष्प बन कर हवा मे मिल जाता है और कितना मिट्टी से रिस-रिस कर भूमिगत जल-स्तर तक जा पहुचता है?

इन प्रश्नो का कोई एक उत्तर नही है। एक स्थान से दूसरे स्थान पर उत्तर मे भिन्नता आ जाती है। इनके उत्तर पर अनेक बाते असर डालती है। पहली बात तो यह कि पानी भूमि के भीतर एक सीमित दर से ही रिस सकता है। मिट्टी उसके रिसने पर रोक लगाती है। यदि रिसने की

दर वर्षा के जल के गिरने की दर से कम हुई तो अतिरिक्त जल जमीन की सतह पर इकट्ठा होने लगता है और उसके बाद पास की किसी नदी या नाले मे बह जाना है। इस तरह मिट्टी के भीतर रिसने वाले वर्षा के जल को दो तथ्य नियन्त्रित करते है

(1) मिट्टी द्वारा नियन्त्रित रिसने की दर।
(2) वर्षा के जल के गिरने की दर।

भूमि के भीतर नीचे की तरफ रिसने की दर मिट्टी की किस्म पर सबसे अधिक निभर करती है। मोटी रेतीली मिट्टी पानी को तेजी से रिसने देती है। बारीक चिकनी मिट्टी पानी को तेजी से रिसने से रोकती है। इन दोनो किस्म की मिट्टियो के बीच अनेक किस्म की मिट्टिया आती है। मिट्टी मे पडी दरारें और गड्ढे अलग से अपना महत्व रखते हे। पानी इनमे से बडी तेजी से गतिशील होता है।

पारगम्यता (बहाव की सहजता) उस वर्षा जल के परिमाण को नियन्त्रित करने वाला मुख्य कारक होता है जो भूमि के भीतर रिसता है। भूमि मे पानी के समाने के लिए केवल मिट्टी का ही पारगम्य होना काफी नही, बल्कि उसके नीचे खाली जगह भी होनी चाहिए, जहा जल समा सके। यदि भूमि के भीतर की खाली जगह पहले से पानी से घिरी हुई हागी तो उसमे और पानी नही समा सकता। हमारे देश मे तीन क्षेत्र ऐसे है जहा यह स्थिति मौजूद है।

(1) पश्चिमी घाट (कोकण) और अन्य कुछ कठोर चट्टानी क्षेत्र

चट्टानो के नीचे खाली स्थान मे जितनी गुजाइश होती है, वर्षा ऋतु की पहली बौछारो के जल से वह जगह भर जाती है। इसके बाद कोई खाली जगह नही बचती। सद अफसोस ! वर्षा का जल भी प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध होता है, मिट्टी भी ऐसी है कि उसमे से जल काफी तेजी से भीतर जाये और इस तरह वर्षा के जल की भूमि के भीतर की यात्रा मे कोई गभीर अडचन नही। किंतु इस जल को एकत्र करने के लिए भीतर खाली स्थान नही होता। फलस्वरूप अधिकाश जल भूमि के तल पर से ही बह जाता है।

(ii) जल लग्नता वाले क्षेत्र

कुछ निचले इलाको और नहरी पानी से भरपूर सिंचित कुछ क्षेत्रो मे भूमिगत जल-स्तर भूमितल के बहुत निकट होता है। वहाँ भूमि के भीतर जल को एकत्र करके रखने वाली जगह लबालब भरी होती है। चाहे वहा की मिट्टी कितनी ही पारगम्य क्यो न हो, वर्षा का थोडा सा जल भी उसके भीतर नही रिस पाता। उसके नीचे खाली जगह मे इतनी गुजाईश ही नही होती है कि वर्षा का जल वहा तक पहुचे।

(iii) नदी तल

प्रकृति के नियमानुसार नदी का मार्ग नीचे पडने वाले स्थलो के साथ-साथ चलता है। नदी तलो मे रेत कणो के बीच का खाली स्थान आमतौर पर जल से पुर होता है। इसलिए चाहे नदी तल रेतीला हो और नदी कितना ही पानी बहाती हो, उसमे भीतर की ओर जल नही रिस सकता।

मिट्टी की ऊपरी सतह से वाष्पन

जसा कि पहले बताया जा चुका है मिट्टी मे भीतर की ओर जाने वाला वर्षा का सारा जल भूमिगत जल-स्तर तक नही पहुचता। उसका बहुत थोडा अश वहा तक पहुच पाता है। शेष सारा जल वाष्पन, पौधो के उच्छवसन की प्रक्रिया से मिट्टी की ऊपरी सतह से ही हवा मे उड जाता है। वास्तव मे मिट्टी मे रिसने वाले 290 एम एच एम वर्षा जल मे से 230 एम एच एम वर्षा-जल मिट्टी की ऊपरी सतह से ही वाष्प बन कर उड जाता है। केवल 60 एम एच एम वर्षा जल ही रिस कर भूमिगत जल-स्तर तक पहुचता है। राष्ट्रीय स्तर पर तो यही स्थिति है। क्षेत्रीय स्तर पर क्या स्थिति है? शुष्क क्षेत्रो मे स्थिति कैसी है?

यदि वर्षा बहुत ही कम होती है तो वह केवल मिट्टी की ऊपरी सतह को ही गीला कर पाती है। अगली वर्षा आने से पहले ही भूमि की सारी आद्रता भाप बन कर वायुमडल मे चली जाती है। इस तरह मिट्टी की ऊपरी सतह मे किसी भी समय इतनी अतिरिक्त आद्रता नही होती कि जल भूमिगत जल-स्तर तक पहुच सके—चाहे नीचे की मिट्टी या चट्टान

कितनी ही पारगम्य क्यो न हो। शुष्क क्षेत्रो मे यह स्थिति है। मिट्टी मे से बहने वाले जल की मात्रा अत्यन्त अल्प होने के कारण मिट्टी और जल दोनो ही खारे होते हैं।

इस प्रकार भूमिगत जल की प्रचुरता के लिए जरूरी है कि वर्षा पर्याप्त हो और मिट्टी का सस्तर भी पारगम्य हो तथा भूमिगत जल एकत्र होने वाले स्थान पर खाली जगह भी काफी हो।

अतर्भौम जल की नियति

हम जानते है कि हर स्थान पर कुछ जल, जो चाहे कम हो या बहुत अधिक, भूमि के भीतर रिस कर अतर्भौम जल स्तर तक पहुच जाता है। प्रश्न किया जा सकता है कि भूमि के भीतर वर्षा से रिस कर पहुचने वाले इस जल का होता क्या है।

इस जल मे बहुत थोडे से अश का हम सिंचाई और पीने के लिए उपयोग करते है। जिन वृक्षो की जडें अतर्भौम जल स्तर तक गहरे मे पहुची हुई होती है, उनके द्वारा इस जल का थोडा सा अश वाष्प बन कर हवा मे उड जाता है। शेष मुख्य और सबसे बडा अश नदियो मे निकल जाता है। बात विचित्र लगती है, लेकिन है सच। नीचे लिखे उदाहरणो से यह बात स्पष्ट हो जाती है

(1) पश्चिमी घाट पर आठ महीने कोई वर्षा नही होती। लेकिन कृष्णा नदी मे सूखे के महीनो मे भी जल प्रवाह बराबर बना रहता है। स्पष्ट है कि यह जल भूमि के भीतर से ही आता है, क्योकि नदी तल अतर्भौम जल स्तर से नीचे होता है। इस तरह भूमि के भीतर से निकलने वाला जो जल नदियो मे निकल आता है उसे पुनर्जात जल या निस्नागी जल कहते हैं।

(2) शुष्क ऋतु मे हम गगा का सारा जल ऊपरी गगा नहर मे डाल देते है। इससे गगा का तल हरिद्वार के निकट लगभग सूखा रह जाता है। किंतु नरौरा (जिला अलीगढ) के स्थान पर गगा मे हमें काफी जल बहता हुआ मिलता है, हालांकि हरिद्वार और नरौरा के बीच इसमे कोई सहायक नदी आकर नही मिलती। यह जल निश्चय ही गगा मे भूमि के भीतर

से रिस कर आया है, क्योकि गगा का तल आसपास के अतभौम जल स्तर से नीचा है। इस तरह का पुनरुत्पादन हमारी बहुत सी नदियो मे होता है। अधिकाश पुनरुत्पादन शायद वर्षा ऋतु या उसके तुरत बाद के समय मे होता है, जब भूमि के भीतर जलस्तर ऊचा रहता है और फलस्वरूप पानी
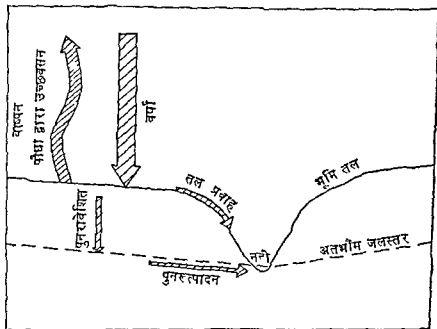
हमारा अधिकाश जल, जो भूमि के ऊपर हो या भीतर, नदियो मे बह जाता है और उसके बाद समुद्र मे चला जाता है।

भारी मात्रा मे रिस कर नदियो मे चला आता है। अधिकाश नदिया मे आकर शामिल होने वाले इस पुनरुत्पादित या पुनर्जात जल का हम कोई उपयोग नही कर पाये है। इससे नदियो मे जल इतना बढ जाता है कि उनमे बाढ आ जाती है और अत मे यह जल समुद्र मे चला जाता है। शुष्क मौसम मे बडी नदियो मे शामिल होने वाले इस पुनर्जात जल का उपयोग हम बडी आसानी से कर सकते है। पुनर्जात जल हो या नही, छोटी नदियो मे तो शुष्क मौसम मे जल ही नही रहता।

यदि हम चाहे तो नदियो मे रिस कर पहुचने वाले अतभौम जल को नदियो मे जाने से एकदम रोक सकते हैं (या इसमे बहुत हद तक कमी कर

सकते है) । हमे शुष्क मौसम मे अतभौंम जल काफी मात्रा मे निकाल कर उसके जल स्तर को नदी तल से केवल नीचा करना होगा और फिर इसका सिंचाई के लिए उपयोग किया जा सकता हे । ऐसे कुछ क्षेत्रो मे इस तरीके से काम लिया जा सकता है जहा सिंचाई की माँग वढी हुई हो या बढाई जा सकती हो । किंतु पहाडी और जगल से ढके इलाको मे अतभौंम जल नदियो मे रिस-रिस कर आता रहेगा, क्योकि वहा सिंचाई की कोई आवश्यकता नही होती । इसमे कोई हर्ज नही । शुष्क ऋतु मे रिसने (पुनरुत्पादित) वाला जल उपयोग के लिए आसानी से नदियो मे से लिया जा सकता है । वर्षा ऋतु मे नदियो मे भूमि के भीतर से रिस कर आने वाला जल वाढ के जल के साथ हमारे हाथ से तब तक निकलता रहेगा, जब तक हम इसे या तो बाँधते नही या इसका रुख नही मोडते ।

जल लग्नता

यदि किसी कारण से अतभौंम जल स्तर भूमि-तल के निकट आ जाता हे तो यह मिट्टी और फसल के लिए वडा हानिकारक सिद्ध हो सकता है । फसल की जडे अपने भीतर हवा खीचती है । यदि जल का स्तर इतना बढ जाये कि जडे उसमे डूब जाये तो फसल अच्छी नही उगती । यदि अतभौंम जल-स्तर जड-स्तर से थोडा ही नीचे रहता है तो भी फसल को काफी क्षति पहुचती है । मिट्टी मे केशिकीय क्रिया से जमीन के भीतर का जल रिस कर ऊपर आ जाता है और वहाँ से भाप बन कर उड जाता है तथा अपने पीछे लवण अवशेष छोड जाता हे । अतभौंम जल मे कुछ लवण हमेशा घुला होता है । जब इस जल का काफी वडा अश भाप बन कर उड जाता है तो अपने पीछे मिट्टी मे काफी बडी मात्रा मे लवण छोड जाता है । जव तक मिट्टी मे से यह नमक किसी तरह से न बहे या बहकर नीचे न चला जाए तो ऊपर की मिट्टी की परत इतनी खारी हो जाती है कि उसमे अच्छी फसल हो ही नही सकती । इस समस्या का हल बुनियादी कारण को दूर करने से ही हो सकता है, अर्थात् अतभौंम जल-स्तर को वहुत अधिक ऊपर उठने से रोकने पर ही ऐसा सभव है ।

देखा गया है कि जिन कुछ क्षेत्रो मे नहरो से सिंचाई शुरू की जाने लगती हे, वहा जल लग्नता की समस्या शुरू हो जाती है, यानी अतभौंम जल

भूमि-तल की ओर ऊपर उठ जाता है। हम जानते हैं कि काफी बडे परिमाण मे जल नहरो, छोटी नदियो और नदियो से रिस कर भूमि के भीतर जा सकता है। यह जल वर्षा के उस जल के अतिरिक्त होता है जो प्राकृतिक रूप से रिस कर भूमि के भीतर जाता है। इसके अतिरिक्त खेतो मे लगाये जाने वाले पानी का भी एक भाग भीतर रिस जाता है। इस तरह भूमि के भीतर जल बहुत अधिक रिसने लगता है। फलस्वरूप अतर्भौम जल स्तर ऊँचा हो जाता है। यह अधिक परिमाण मे रिस कर आया जल नदियो मे भारी मात्रा मे बह जाता है। यदि उस क्षेत्र मे नदिया काफी सख्या मे हुई तो अतर्भौम जल-स्तर भूमि-तल से काफी नीचे ही स्थिर हो जाता है और कोई प्रतिकूल बात घटित नही होती। किंतु उस क्षेत्र मे काफी सख्या मे नदियाँ, जो जमीन के भीतर के पानी को खीच लेती है, न होने की स्थिति मे अतर्भौम जल-स्तर खतर-नाक हद तक भूमि-तल के निकट आ जाता है। इसे रोकने के लिए हमारे सामने तीन विकल्प है

(1) नहर आदि से भूमि के भीतर पानी को रिसने से रोकने के लिए उनके भीतर पलस्तर आदि किया जा सकता है और खेतो मे सिंचाई के जल को सिंचाई के बेहतर तरीको और पद्धतियो से काम लेकर रिसने से रोक सकते है।

(2) हम प्रभावित क्षेत्र मे कृत्रिम नाले या छोटी नदियाँ आदि खोद सकते है और उन्हे प्राकृतिक नदियो से मिला सकते हैं। यह कृत्रिम नदी नाले अतिरिक्त अतर्भौम जल को बहा ले जायेगे और अतर्भौम जल स्तर खतर-नाक हद तक ऊँचा होने से रुक जायेगा।

(3) हम भूमि के भीतर के जल को कुओ आदि से खीच सकते हैं और नहरी सिंचाई के अलावा इस जल से भी सिंचाई कर सकते हैं। यह परि-योजना अब कुछ व्यवहारिक रूप पकड रही है और नहरी पानी कुओ के पानी से अपेक्षाकृत सस्ता होने के कारण इसके अमल मे पेश आने वाली दिक्कतो के बावजूद इस परियोजना को इस समस्या का बेहतर हल समझा जाता है। कुए के पानी को भूमि के भीतर से निकालना पडता है जबकि नहर का पानी गुरुत्व के बल से बहता है। इसलिए नहरी पानी बहुत सस्ता होता है और किसान इसे बेहतर समझते हैं। किंतु अब स्थिति बदल रही है। नहर सिचाई की बढती हुई माग को पूरा नही कर पा रही हैं, विशेष

कर चरम माग के समय मे । नहरे जल के एक निश्चित अधिकतम बहाव के के लिए बनायी जाती है, न कि जल की चरम माग पूरा करने के लिए। सिंचाई की चरम माग को पूरा करने वाली नहरो का निर्माण बहुत महगा पडता है, चाहे स्रोत स्थल पर जल पर्याप्त मात्रा मे क्यो न उपलब्ध हो। विशाखन नहरो को अक्सर जल पर्याप्त मात्रा मे नही मिलता। इसलिए आज का किसान आश्वस्त नही कि उसे सही समय पर अपनी आवश्यकता का पूरा जल मिल जायेगा। दूसरी तरफ निजी कूप का जल काफी महगा होते हुए भी सुगमता से मिल जाता है। उससे पानी मिलने का भरोसा भी रहता है और अपनी मर्जी से जब चाहे उसमे से पानी ले सकते है। कुए के जल से मिलने वाले लाभ अधिक उत्पादन की किस्म वाली फसलो के लिए और अहम हो जाते हैं। ऊँची पैदावार वाली फसलो मे अधिक निवेशो का नियोजन करना पडता है और उन्हे जल भी समय पर सही परिमाण मे देना आवश्यक होता है। फसलो के लिए जल की पूर्ति निश्चित न होने पर इन्हे बोने मे जोखिम बहुत बढ जाता है। इसलिए कुओ से स्वतत्र रूप मे आवश्यकता के अनुसार जल की पूर्ति (एवजी या एक मात्र साधन के रूप मे) एकदम सही और उचित रहती है। फिर नहरी और भूमि के भीतर के जल के सही तरीके से मिले-जुले उपयोग से जल लग्नता की समस्या से बचा जा सकता है और साथ ही उपलब्ध जल से न्यूनतम राष्ट्रीय लागत पर अधिकतम लाभ भी उठाया जा सकता है। कूप और नहर के जल कई दृष्टि से एक-दूसरे के पूरक है और इनका विकास इसी प्रकार करने की आवश्यकता है।

अतर्भौम जल पूर्ति

हमारे पावो के नीचे भूमि के भीतर काफी मात्रा मे जल मौजूद है। यह जल मिट्टी के कणो के बीच खाली स्थान और चट्टानो की दरारो और छिद्रो मे जमा रहता है। यह देश की बडी भारी सपदा है। लेकिन यह वह सपदा है जो हमे दाय मे मिली है। यह हमे भी अपनी सतान को दाय मे सौपना है और अच्छी तथा भरपूर स्थिति मे। इसमे हमे अनावश्यक कमी नही लानी चाहिए। यह तभी सभव है, जब हम भूमि के भीतर से, उसके भीतर रिस कर जाने वाले जल से कम परिमाण मे जल निकाले। इसलिए हमे

भूमि-तल की ओर ऊपर उठ जाता है। हम जानते हैं कि काफी बडे परिमाण मे जल नहरो, छोटी नदियो और नदियो से रिस कर भूमि के भीतर जा सकता है। यह जल वर्षा के उस जल के अतिरिक्त होता है जो प्राकृतिक रूप से रिस कर भूमि के भीतर जाता है। इसके अतिरिक्त खेतो मे लगाये जाने वाले पानी का भी एक भाग भीतर रिस जाता है। इस तरह भूमि के भीतर जल बहुत अधिक रिसने लगता है। फलस्वरूप अतभौंम जल स्तर ऊँचा हो जाता है। यह अधिक परिमाण मे रिस कर आया जल नदियो मे भारी मात्रा मे बह जाता है। यदि उस क्षेत्र मे नदियाँ काफी सख्या मे हुई तो अतभौंम जल-स्तर भूमि-तल से काफी नीचे ही स्थिर हो जाता है और कोई प्रतिकूल बात घटित नही होती। किंतु उस क्षेत्र मे काफी सख्या मे नदियाँ, जो जमीन के भीतर के पानी को खीच लेती है, न होने की स्थिति मे अतभौंम जल-स्तर खतरनाक हद तक भूमि-तल के निकट आ जाता है। इसे रोकने के लिए हमारे सामने तीन विकल्प है

(1) नहर आदि से भूमि के भीतर पानी को रिसने से रोकने के लिए उनके भीतर पलस्तर आदि किया जा सकता है और खेतो मे सिंचाई के जल को सिंचाई के बेहतर तरीको और पद्धतियो से काम लेकर रिसने से रोक सकते है।

(2) हम प्रभावित क्षेत्र मे कृत्रिम नाले या छोटी नदिया आदि खोद सकते है और उन्हे प्राकृतिक नदियो से मिला सकते है। यह कृत्रिम नदी-नाले अतिरिक्त अतभौंम जल को बहा ले जायेगे और अतभौंम जल-स्तर खतरनाक हद तक ऊँचा होने से रुक जायेगा।

(3) हम भूमि के भीतर के जल को कुओ आदि से खीच सकते हैं और नहरी सिंचाई के अलावा इस जल से भी सिंचाई कर सकते है। यह परियोजना अब कुछ व्यवहारिक रूप पकड रही है और नहरी पानी कुआ के पानी से अपेक्षाकृत सस्ता होने के कारण इसके अमल मे पेश आने वाली दिक्कतो के बावजूद इस परियोजना को इस समस्या का बेहतर हल समझा जाता है। कुए के पानी को भूमि के भीतर से निकालना पडता है जबकि नहर का पानी गुरुत्व के बल से बहता है। इसलिए नहरी पानी बहुत सस्ता होता है और किसान इसे बेहतर समझते है। किंतु अब स्थिति बदल रही है। नहरें सिंचाई की बढती हुई माग को पूरा नही कर पा रही है, विशेष

कर चरम माग के समय मे । नहरें जल के एक निश्चित अधिकतम वहाव के के लिए वनायी जाती हैं, न कि जल की चरम माग पूरा करने के लिए। सिचाई की चरम माग को पूरा करने वाली नहरो का निर्माण बहुत महगा पडता है, चाहे स्रोत स्थल पर जल पर्याप्त मात्रा मे क्यो न उपलब्ध हो। विशाखन नहरो को अक्सर जल पर्याप्त मात्रा मे नही मिलता। इसलिए आज का किसान आश्वस्त नही कि उसे सही समय पर अपनी आवश्यकता का पूरा जल मिल जायेगा। दूसरी तरफ निजी कूप का जल काफी महगा होते हुए भी सुगमता से मिल जाता है। उससे पानी मिलने का भरोसा भी रहता है और अपनी मर्जी से जब चाह उसमे से पानी ले सकते है। कुए के जल से मिलने वाले लाभ अधिक उत्पादन की किस्म वाली फसलो के लिए और अहम हो जाते है। ऊँची पदावार वाली फसनो मे अधिक निवेशो का नियोजन करना पडता है और उन्हे जल भी समय पर सही परिमाण मे देना आवश्यक होता है। फसलो के लिए जल की पूर्ति निश्चित न हाने पर इन्हे वोने मे जोखिम वहुत वढ जाता है। इसलिए कुओ से स्वतत्र रूप मे आवश्यकता के अनुसार जल की पूर्ति (एवजी या एक मात्र साधन के रूप मे) एकदम सही और उचित रहती हैं। फिर नहरी और भूमि के भीतर के जल के सही तरीके से मिले-जुले उपयोग से जल लग्नता की समस्या से वचा जा सकता है और साथ ही उपलन्ध जल मे न्यूनतम राष्ट्रीय लागत पर अधिकतम लाभ भी उठाया जा सकता है। कूप और नहर के जल कई दृष्टि से एक-दूसरे के पूरक हैं और इनका विकास इसी प्रकार करने की आवश्यकता है।

अतर्भौम जल पूर्ति

हमारे पावो के नीचे भूमि के भीतर काफी मात्रा मे जल मौजूद है। यह जल मिट्टी के कणो के बीच खाली स्थान और चट्टानो की दरारो और छिद्रो मे जमा रहता है। यह देश की वडी भारी सपदा है। लेकिन यह वह सपदा है जो हमे दाय मे मिली है। यह हमे भी अपनी सतान को दाय मे सौंपना है और अच्छी तथा भरपूर स्थिति मे। इसमे हमे अनावश्यक कमी नही लानी चाहिए। यह तभी सभव है, जव हम भमि के भीतर से, उसके भीतर रिस कर जाने वाले जल से कम परिमाण मे जल निकाले। इसलिए हमे

भूमि मे जल के कुल परिमाण के बजाय यह पता लगाना होगा कि उसमे प्रतिवर्ष कितना जल रिस कर पहुचता है।

इस रिसने वाले जल के कुल परिमाण का सही-सही निर्धारण कठिन है। किंतु कई तरीको से हम इसका अनुमान अवश्य लगा सकते हैं और हमारे लिए इतना ही पर्याप्त होगा।

वर्षा ऋतु मे कुओ के जल-स्तर मे वद्धि को माप कर भूमि के भीतर वर्षा के जल के रिस कर पहुचने वाले परिमाण के बारे मे कुछ अदाजा जरूर लग सकता हे। रिसकर भीतर जाने वाले जल के परिमाण का सही अनुमान प्राप्त करने से पहले कुओ के जल स्तर मे वृद्धि की जानकारी के अलावा दूसरे अनेक तथ्यो की भी आवश्यकता होगी। कुछ अनिश्चितताओ के बावजूद इस तरीके से काफी हद तक सही अनुमान मिल जाता है।

कुछ प्रत्यक्ष तरीके भी हैं जिनसे हम काम ले सकते हैं। लाइसीमीटर एक ऐसा ही तरीका है जिस मे प्राकृतिक फसल मिट्टी-पानी की स्थितिया कृत्रिम रूपसे उत्पन्न की जाती है। वास्तवमे यहबडे गमले मे पौधे उगाने और गमले के तल मे टपक कर पहुचने वाले पानी के प्रेक्षण के तरीके से मिलता-जुलता तरीका है। लाइसीमीटर बडे और जटिल हो सकते हैं, इस तरीके से सूचना तो भरोसे लायक मिल जाती है, किंतु यह महगा पडता है और असुविधाजनक भी है। इसलिए आमतौर पर इस विधि का विकास करने मे रुचि नही दिखायी गयी है।

दूसरी विधि रेडियोधर्मी जल की है। इस विधि के अतगत जब रेडियोधर्मी जल भूमि पर डाला जाता है तो मिट्टी के भीतर उसके सचलन का अनुसरण उसकी रेडियोधर्मिता से किया जाता है।

यह विधि काफी म्टीक है और देश के एक छोटे भाग मे इसका प्रयोग भी किया गया है। इसलिए अभी तक तो हम अनुमान पर चल रहे हैं किंतु इससे हमे किसी गभीर बाधा का सामना नही करना पड रहा हैं, क्योकि हमारे विकास की पद्धति ऐसी है कि भूमिगत जल के पुनर्विसजन के बारे मे पूव जानकारी या आकडे प्राप्त करने या न करने से कोई गभीर असर नही पडने वाला है। वसे इस तरह की पूव जानकारी होनी चाहिए। अगली सब से अच्छी स्थिति भूमिगत जल के प्रयोग मे वृद्धि की है, किंतु यह वृद्धि धीमी गति से होनी चाहिए। अतभौम जल-स्तर म धीरे-धीरे

गिरावट के सकेत मिलते ही भूमिगत जल का और अधिक प्रयोग रोक देना चाहिए। यह दृष्टि व्यवहारिक है, किंतु इस मामले मे पूरी योजना पहले से नही बनायी जा सकती है।

पूरे देश मे हर वर्ष हम केवल 10 एम एच एम भूमिगत जल का प्रयोग कर रहे है। भूमिगत जल और कितने परिमाण मे हम निकाल सकते है ? हम नही जानते हैं कि देश के विभिन्न क्षेत्रो मे जमीन मे पानी रिसने की सही-सही दर कितनी है, इसीलिए इस प्रश्न का उत्तर सही-सही देना कठिन है। इस क्षेत्र मे काय करने वाले कुछ व्यक्तियो ने बहुत ही सूझ-बूझ भरे अनुमान लगाये है और उनके अनुसार पूरे देश मे भूमि के भीतर वर्षा के जल के रिसने की कुल मात्रा 60 एम एच एम है। क्या हम भूमि के भीतर से निकाले जाने वाले जल का परिमाण 60 एम एच एम तक सीमित रख सकते हैं ? सैद्धातिक रूप से ऐसा किया जा सकता है, किंतु व्यवहारिक रूप से ऐसा करना सभव नही है। 60 एम एच एम के इस वार्षिक परिमाण मे पहाडी और जगलो से ढके क्षेत्रो की भूमि के भीतर रिसने वाला जल भी शामिल है। इस भूमिगत जल को पथ आदि से निकालने के बजाय पुनर्जात जल के रूप मे प्रयोग मे लाना अपेक्षाकृत अधिक व्यवहारिक जान पडता है। कृष्य क्षेत्रो की भूमि मे रिसने वाले भूमिगत जल को ही सिचाई के लिए कुओ आदि से बाहर खीचना अधिक लाभकर हो सकता है। फिर यहाँ भी, सारे भूमिगत जल को बाहर खीच लेना सूझ-बूझ का काम न होगा और ऐसा करने से पुनर्जात जल के सोते सूख जायेंगे। फलस्वरूप आशिक या पूरी तरह से पुनर्जात जल पर निभर रहने वाले सिंचाई के मौजूदा साधनो को जल नही मिल पायेगा। भूमिगत जल के उपयोग की हमारी चरम सीमा 60 एम एच एम है, किंतु हम इससे कही अधिक कम यानी 20-30 एम एच एम भूमिगत जल का ही उपयोग कर रहे है।

अधिविकर्ष

हम भूमिगत जल का सिंचाई के लिए उपयोग प्राचीन काल से करते आ रहे है। इसके लिए जिस प्रोद्योगिकी से काम लिया जाता रहा है वह काफी सहज और सरल है और हाल के कुछ वर्षो मे इसमें काफी सुधार भी हुआ है। अब हम बहुत-बहुत गहरे भूमिगत जल को भी बाहर खीच सकते है। हमारे

पूवजो को गर्मी के मौसम में कम गहरे कूपो को सूख जाने की जिस दिक्कत का अक्सर सामना करना पडता था, उससे हम बच गये है लेकिन इससे भूमिगत जल के रिसने के परिमाण से अधिक परिमाण में बाहर खीचने का विकल्प हमारे सामने खुल गया है और हम बढ भी उसी विकल्प की ओर रहे है। भूमिगत जल सिंचाई-कार्यों को नहरी सिंचाई से स्वतत्र या उसके पूरक रूप मे विकसित करने मे अनेक लाभ है। भूमिगत जलपूर्ति सिंचाई की चरम आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए बहुत ही उपयुक्त है। इसके अलावा इसके लिए कुए आदि बनाने मे भी अधिक समय नही लगता और इनसे पानी तुरत मिलने लगता है। इस तरह के लाभ-लागत को काफी हद तक पूरा कर देते हैं। यही कारण है कि भूमिगत जल का उपयोग दिन-प्रति-दिन बढता जा रहा है। यह अच्छा ही है, क्योकि इस से हमे अधिक खाद्यान्न मिल सकेगा। किंतु यह सभावना भी लगातार बनी हुई है कि हम भूमिगत जल का उपयोग सीमा से अधिक न कर डाले। वास्तव में कुछ क्षेत्रो में (पजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, उत्तरी गुजरात मे) हम सिंचाई कार्यों के लिए भूमिगत जल का बहुत अधिक उपयोग कर रहे है। भूमि के भीतर रिसकर पहुँचने वाले जल की मात्रा मे कही अधिक। इसके फलस्वरूप कुछ हद दहलाने वाला एक तथ्य उभर कर सामने आ रहा है, जल लग्नता से एकदम विपरीत तथ्य, यानी अतर्भौम जल-स्तर का निरतर गिरते जाना। आप कह सकते है कि जब सिचाई से कृषि उत्पादन में वृद्धि होती है तो ऐसा करने मे क्या हानि है ? तक ठोस होते हुए भी, जब इस समस्या पर दीर्घ अवधि के सदभ मे विचार किया जाता है तो यह तक थोथा नजर आने लगता है, क्योकि अतर्भौम जल-स्तर के निरतर गिरते जाने का मतलब है कि जल को बाहर निकालने के लिए और अधिक प्रयत्न। अत मे वह स्थिति भी आयेगी जब हमे भूमि के भीतर जल के रिसने की दर की तुलना मे जल निकालने की दर विवश होकर सीमित करनी होगी। किंतु यदि अतर्भौम जल-स्तर अनावश्यक रूप से अधिक नीचा है तो अभी से जल निकालने की दर कम क्यो नही कर दी जाती ताकि यह स्तर बहुत अधिक नीचे न गिरे। ऐसा करने के लिए हमे ऐसी योजनाए तयार करनी पडेगी, जो व्यवहारिक भी हो और सामाजिक दृष्टि से उचित भी। भूमिगत जल के विशाल उपयोग के बावजूद क्या हम कुछ ऐसा नही कर सकते कि भूमिगत जल का स्तर और

अधिक न गिरे। जैसे वर्षा के जल के रिसने की दर को कृत्रिम रूप से बढा कर। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के बहुत से तरीके हैं। वर्षा के जल को तालाबो मे रोकना, इसे भूमि के अधिक क्षेत्र मे फैलाना और कुओ मे कृत्रिम अतक्षेपण आदि इन तरीको मे आते है। लेकिन इन सब मे कुछ तकनीकी अडचने हैं और लागत भी अधिक बैठती है, विशेषकर अपने देश की जलवायु और खेती के ढाचे के सदभ मे। इसलिए सामान्य नियम यही होना चाहिए कि भूमिगत जल को इतने अधिक परिमाण मे न निकाला जाये कि अतर्भौम जल स्तर निरतर नीचे गिरता जाये। वैसे हमारे देश मे ऐसे भी क्षेत्र है (जिन मे से तीन पर हम विचार कर चुके है), जहा भूमिगत जल को अधिक मात्रा मे निकालने पर वहा की भूमि मे जल के रिसने का परिमाण भी अपने आप बढ जाता है। निश्चय ही हम ऐसी स्थिति से लाभ उठा सकते है। यहाँ ऐसी स्थितियाँ तब उत्पन्न होती हैं, जब भीतर की मिट्टी के कणो के बीच का स्थान पहले से ही जल से आपूरित होता है जिसके कारण उस मिट्टी के भीतर और जल नही जा सकता। तब सूखे के मौसम मे मिट्टी के कणो के बीच के स्थान मे भरे जल को निकाल कर उन्हे खाली करना पडेगा और उस जल से सिचाई करनी होगी। वर्षा के मौसम मे यह स्थान अपनेआप फिर से जल मे भर जायेंगे। इसके लिए किसी विशेष यात्रिकी की आवश्यकता नही। इस तरीके से जललग्नता वाले क्षेत्रो मे काम किया जा सकता है और किया भी गया है। और इससे अनेक क्षेत्रो मे राहत भी मिली है। इस तरीके से कोकण क्षेत्र मे भी बखूबी काम लिया जा सकता है, क्योकि वहाँ कुल भूमिगत जल को बाहर निकाला जा सकता है या उतना जल निकाला जा सकता है, जितना आर्थिक दृष्टि से सभव है। इस तरह उस क्षेत्र मे सूखे के मौसम के दौरान टनो जल निकाल कर अनेक मीटर तक भूमिगत जल का स्तर नीचा किया जा सकता है। ये अतर्भौम जलाशय (चट्टानो मे दरारो और छिद्रो के कारण) वर्षा के हर मौसम मे पूरे भर जायेंगे, क्योकि वहा वर्षा-जल भारी मात्रा मे उपलब्ध है और मह भूमि के भीतर रिसता भी तेज गति से है। किंतु इस योजना के अतर्गत चट्टानी क्षेत्रो मे बिजला के गहरे कुए खोदना बहुत ही खर्चीला होगा। किंतु इतना खर्चीली भी नही कि इसे सहा जा न सके।

तीसरा विकल्प यह हो सकता है कि मौसमी नदियो के निकट के क्षेत्रो

मे इसी तरीके से काम लेना। हमारे यहा मौसमी नदिया वहुत वडी सख्या मे है, जिनमे वर्षा के मौसम मे प्रचुर मात्रा मे जल वहता है किंतु उसके बाद उनमे जल नही रहता। इनमे से वहुत सी नदिया ऐसी हैं, जिनके तल वर्षा ऋतु के बाद सूख जाते हैं। किंतु यदि हम ऊपरी सतह को जरा सा भी खोदे तो अतभौम जल स्तर तुरत मिल जाता है। इसका मतलव हुआ कि नदी का रेतीला तल(तटो के नीचे के पास की रेतीली तहे) जल से पूरित है। इस जल को निकाल कर सिंचाई के काम मे लाया जा सकता है। इसमे नदी तलो के नीचे भूमिगत जल का स्तर भी नीचा हो जायेगा। दूसरी तरफ, वर्षा की अगली ऋतु आते ही नदियो मे वाढ आयेगी और नदी तल फिर से जल से भर उठेगे। रेत मे से जल काफी परिमाण मे तेजी से भीतर रिस सकता है। फिर नदी के जल का एक भाग तल मे भीतर रिस जायेगा और नदी की धार मे कम जल रहेगा। फलस्वरूप वाढ भी कम हो जायेगी। यह योजना इतनी आकर्षक प्रतीत होती है कि इसे सयत्न व्यवहारिक बनाना चाहेगे। किंतु इसकी कीमत जरूर चुकानी होगी।

भूमिगत जलाशय और गहन खेती

यह अनुमान लगाया जा सकता है कि किसी निर्दिष्ट नदी तल मे से वर्षा ऋतु की पूर्ण अवधि के दौरान कितना जल भूमि के भीतर रिस जायेगा। इसके बाद नदी तट के साथ-साथ काफी सख्या मे कूप खोदे जा सकते है और सूखे के मौसम मे उनमे से सही परिमाण मे जल निकाला जा सकता है। यदि हम उनके द्वारा कम जल निकालेगे तो नदी तल वर्षा ऋतु के पूरा होने से पहले ही जल से पूरित हो जायेगा। यदि हम अधिक पानी निकालेंगे तो वर्षा ऋतु मे तल आशिक रूप से जल से भर जायेगा, ऊपर तक नही भरेगा। इस तरह का समायोजन सही सही किया जा सकता है। मोटे तौर पर लगाये गये अनुमान से पता चलता है कि बिना कोई खतरा उठाये हम भारी मात्रा मे जल निकाल सकते है। निकाला गया भूमिगत जल फिर से उतनी ही मात्रा मे भर जाता है। अब प्रश्न यह उठता है कि मुक्त रूप से भारी मात्रा मे निकाले जाने वाले इस जल का क्या उपयोग हो सकता है। स्पष्ट है कि इसका उपयोग सिंचाई के लिए किया जा सकता है। इस तरह प्राप्त किए जाने वाले जल से पूरा लाभ उठाने के लिए हमे गहन खेती को प्रोत्साहित

ख्वाजा चित्र
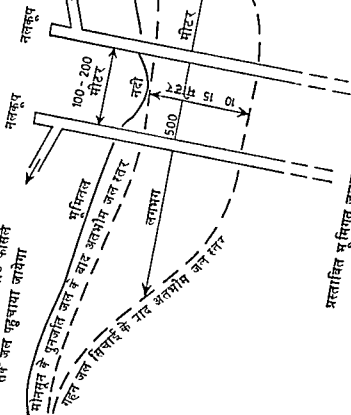
प्रस्तावित भूमिगत जलाशय की योजना का आरेख।

करने के लिए कदम उठाने पड़ेंगे और हो सकता है कि हमें अतिरिक्त जल को निकट के क्षेत्र तक पहुचाना पड़े। यह योजना का कृत्रिम अग है। एक
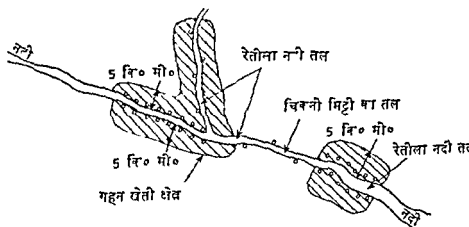
नलकूप से सिंचाई द्वारा गहन खेती की योजना का आरेख।
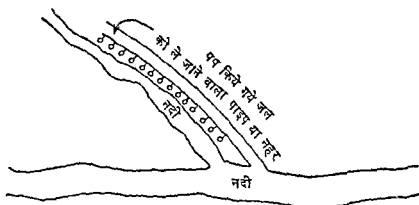
सूखे मौसम में नदी तल से पंप किये गये जल के साथ नदी के जल विसर्जन (नहरी पूर्ति) में वृद्धि।

और नई स्थिति यह पैदा होगी कि अतर्भौम जल स्तर मे बहुत अधिक उतार-चढाव होने लगेगा। शुष्क ऋतु मे जल स्तर दस या बीस मीटर नीचे चला
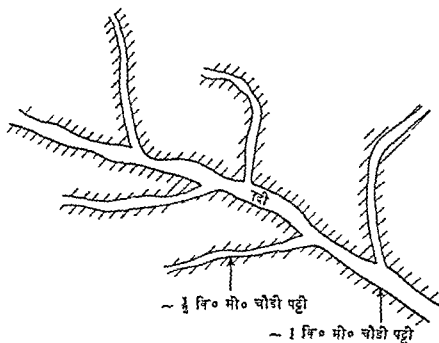
नल कूपो से स्थानीय रूप से जल निकासी पर आधारित गहन खेती के लिए उपयुक्त क्षेत्र।

जायेगा और वर्षा ऋतु के अत मे एकदम भूमितल तक चढ आयेगा। इसका मतलब यह हुआ कि इस क्षेत्र मे सभी कूप गहरे होने चाहिए। किंतु यह योजना व्यवहारिक प्रतीत होती है।

यहाँ यह भी बता दिया जाये कि यह योजना अभी केवल वैचारिक स्तर तक ही है और जिसका उद्देश्य भरणशील भूमिगत जलाशय बनाना है। वैसे योजना आकर्षक प्रतीत होती है, किंतु इसे अभी व्यवहारिक रूप दिया जाना है चाहे प्रायोगिक आधार पर ही। यदि जिस तरह से सोचा गया है तरह यह योजना सफल हो जाती है तो हम गंगा घाटी मे से ही

एच एम जल पाने मे सफल होगे, जहाँ के लिए यह योजना सर्वाधिक उपयुक्त प्रतीत होती है। गगा परियोजना 50 एम एच एम जल देती है और उसकी तुलना मे यह परिमाण कम लगता है। किंतु भूमिगत जल के आज के कुल उपयोग की तुलना मे यह परिमाण इतना कम नही बैठता। आज केवल 10 या 12 एम एच एम भूमिगत जल ही उपयोग मे लाया जा रहा है।

निष्कर्ष

(1) हमे भूमिगत जल के उपयोग मे धीरे-धीरे तब तक वृद्धि करनी चाहिए, जब तक वह सभी स्रोतो से मिलने वाले पुनर्जात जल से तुलना न करने लगे। इससे वर्षा ऋतु मे पुनर्जात जल के परिमाण पर भी असर पडेगा और फलस्वरूप इससे बाढो के नियत्रण मे सहयोग मिलेगा।

(2) मौसमी नदियो के तटो के निकट के भूमिगत जल का भी हमे उपयोग करना चाहिए, लेकिन अधिकतम उचित सीमा तक। इससे बाढ के जल को भूमिगत भडारो मे रोक कर रखा जा सकेगा और इससे उसकी तेजी मे कमी लाई जा सकेगी।

(3) मुख्य नदियो के तटो के साथ साथ भूमिगत जल का उपयुक्त सीमा से अधिक उपयोग नही करना चाहिए, क्योकि इनके जल का पूरा उपयोग शुष्क मौसम मे पहले से ही किया जा रहा है। किंतु यह प्रतिबध इन नदियो के तलो के नीचे भूमिगत जलाशय बनाने की स्थिति मे हटाया जा सकता है। जल की मौजूदा आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए तब हमे वैकल्पिक साधनो का निर्माण करना पडेगा। किंतु फिलहाल अभी इसकी कोई आवश्यकता नही।

(4) समुद्री तट के बहुत निकट के क्षेत्रो मे भूमिगत जल भारी मात्रा मे नही निकाला जाना चाहिए। सभी जानते है कि समुद्री तट के साथ के क्षेत्रो का भूमिगत जल रिस-रिस कर समुद्र के भीतर जाता रहता है। इससे समुद्र का खारा पानी भूमि की ओर नही चलता और रिस रिस कर भूमिगत जल को खराब नही करता। यह सतुलन बनाये रखना जरूरी है।

(5) हमे सिंचाई की और सुविधाओ का निरतर विकास उसी सूरत मे करना चाहिए, जब हम उन्हे अनिश्चित काल तक चालू रख सके। जल विशिष्ट वस्तु है। एक बार इसकी पूर्ति की व्यवस्था करने के बाद इसे निरतर, बिना कमी किये, जारी रखना चाहिए। तब जल की घटाई गई पूर्ति से निपटना कष्टकर हो जाता है, बेशक वह स्थिति इतनी सकटपूर्ण नही कही जा सकती।

4

नितात विपरीत छोर

चेरापूजी मे प्रतिवर्ष 11 मीटर वर्षा होती है, जबकि जैसलमेर मे केवल 0 2 मीटर। दोनो क्षेत्रो मे सामान्यतया वर्षा इतनी ही होती है और दानो क्षेत्रो मे इन स्थितियो से समझौता कर लिया गया है। किंतु कभी-कभी एक और समस्या भी उठ खडी होती है। चेरापूजी मे सामान्य से बहुत अधिक वर्षा हो जाती है और जैसलमेर मे सामान्य से बहुत कम। फलस्वरूप एक ओर बाढ तो दूसरी ओर सूखा।

हमारे देश मे कभी किसी तो कभी किसी क्षेत्र मे प्रतिवप बाढ आती है। अगर बाढ नही आयी तो सूखा चला आया। कभी-कभी दोनो एक साथ आ जाते है। एक क्षेत्र मे बाढ तो दूसरे क्षेत्र मे सूखा। कभी-कभी एक ही क्षेत्र मे बारी-बारी से बाढ और सूखा दोनो आ जाते है। इस तथ्य को ध्यान मे रखते हुए प्रधानमत्री का राहत कोप निरतर काम करता रहता है।

बाढ और सूखे के बुनियादी कारणो पर हमारा कोई नियत्रण नही। हमे नही पता कि जल प्रलय और अनावृष्टि को कैसे रोका जाये। किंतु इनके तीव्र प्रभावो को निश्चय ही हलका किया जा सकता है। इन प्रणालिया से सभी परिचित है। हमे किसी भी निर्दिष्ट स्थिति मे इन प्रणालिया मे से कुछेक का सही मेल करना होगा और उससे काम लेना होगा।

बाढ

बहुत छोटी अवधि मे बहुत अधिक वर्षा होने पर जल के बहाव को सयत करने और उसे बहा ले जाने वाली प्राकृतिक प्रक्रियाए जल के इतने परिमाण

को झेलने मे असमथ हो जाती है। धारा की सीमाओ से नदी का जल स्तर ऊपर उठ जाता है और आसपास के उन क्षेत्रो मे फैल जाता है, जहा तक उसके फैलने की सभावना नही होती। कभी-कभी नदी की मुख्य धारा अपना मार्ग बदल लेती है और उसका जल बडी तेजी से ऐसे स्थानो पर फैलने लगता है, जहाँ उसके फैलने की कोई उम्मीद नही होती। ऐसी स्थिति मे जल बहुत ही निर्मम हो सकता है। जल जनजीवन, सपत्ति और वनस्पति सपदा को उखाड फेंक सकता है हमारे देश मे कही न कही लगभग नियमित रूप मे ऐसा होता रहता है। बाढ से वष भर मे देश को फसलो के नष्ट होने से 10 लाख टन खाद्यान की हानि उठानी पडती है। इससे पूरे वर्ष भर कई लाख लोगो का पेट भरा जा सकता है।

देश के शेष भागो की तुलना मे, उत्तरी मैदान के बाढ मे प्रभावित होने की अधिक सभावना रहती है। आसाम, उत्तर प्रदेश, पजाब, पश्चिमी बगाल और बिहार बाढ की चपेट मे सब से अधिक आते है। मध्यप्रदेश और कर्नाटक बाढ से सबसे कम प्रभावित होने वाले क्षेत्र है।

समुचित प्रयत्नो से बाढ की तीव्रता को कम किया जा सकता है। इसका सब से व्यावहारिक उपाय है नदियो पर बाँध बनाना, उनका जल बहुमुखी जलाशयो मे रोकना और जहाँ भी हो सके, नहरो का भारी जाल बिछा कर इस जल को उन मे ले जाना। क्रुद्ध जल को अपने वश मे करके उससे काम लेने से बेहतर बात क्या हो सकती है। किंतु इस उपाय की सीमाए भी है और इसका मूल्य भी चुकाना पडता है। केवल पहाडी क्षेत्रो मे ही इस तरीके से काम किया जा सकता है। कभी-कभी मैदानो मे इतनी अधिक वर्षा होती है कि यह अतिरिक्त जल-निकास प्रणाली पर भारी पडता है। ऐसी स्थिति से निपटने के लिए अनेक इजीनियरी उपाय किये जाते है। बहाव को बाधने के लिए पुश्ते बनाये जाते है और नदी के जल को किनारो से बाहर निकलने से रोका जाता है। हजारो किलोमीटर लबाई के पुश्ते पहले ही बनाये जा चुके है। किंतु यह इस स्थानीय समस्या का आंशिक हल है। पुश्ते बाँधने से अक्सर बाढ का पानी नदी के निचले क्षेत्रो मे और अधिक खराब सूरत पकड लेता है। सभी नदियो के हर नाजुक हिस्से पर पुश्ते बाँधते चले जाना सभव नही है। इसका मतलब बाढ की समस्या जहा की तहाँ।

कुछ स्थितियो मे छोटे क्षेत्र मे गभीर बाढ की अपेक्षा बडे क्षेत्र मे हलकी बाढ से अधिक आसानी से निपटा जा सकता है। कुछ सूरतो मे तो हलकी बाढ स्वागत योग्य हो सकती है, क्योंकि वह सिंचाई के लिए जल के अलावा खूब उपजाऊ कछारी मिट्टी लाती है और उस क्षेत्र की मिट्टी मे जमा हो गये लवणो को बहाकर ले जाती है। बाढ सिंचाई एक तरह का जुआ है। क्योंकि बाढ पर नियंत्रण रखना कठिन होता है और हो सकता है कि बाढ उपजाऊ चिकनी मिट्टी की अपेक्षा मोटी रेत अपने साथ लाये। इसलिए जहा तक व्यावहारिक है, नदियो के नियंत्रण पर ही जोर दिया गया है।

कभी-कभी नदी के किसी भाग मे बहुत अधिक रेत भर जाने से भी नदी के जल का बहाव मद हो जाता है ऐसी स्थिति मे मशीनो से रेत हटानी पडती है, जो काफी महगा सिद्ध होता है।

जनाब कमाल की बात है। इसमे फिर रेत भर गया है। रेत निकालने और पुश्ते बाधने का ठेका आया ही समझो।

कुछ क्षेत्रो की स्थलाकृति एकदम सपाट होती है और जल को तुरत निकास नही मिलता। फलस्वरूप काफी बडे क्षेत्र म पानी फैल जाता है। ऐसी स्थिति मे कृत्रिम अपवाहिकाए बनानी पडती है ताकि जल का नदी के निचले भाग मे डाला जा सके। 10 हजार किलोमीटर से अधिक लबी अपवाहिकाए पहले ही बनायी जा चुकी है। यह हल भी इतना सतोषजनक प्रतीत नही होता। अपवाहिकाओ के निर्माण मे लगने वाले प्रयत्न और लागत को देखकर उत्साह नही उपजता, क्योकि हमारे लिए प्रकृति स्वय इस तरह की व्यवस्था कर सकती थी।

पोखर और नाले अपने भीतर कुछ सीमा तक ही पानी रोक सकते हैं। वे वर्षा ऋतु के प्रारभ मे बाढ के जल को रोकने मे कुछ सीमा तक ही सहायक होते है।

वनस्पति भी जल के बहाव की तेजी को कुछ हद तक कम कर सकती है। इसी तरह सडकें और रेलगाडियो के मार्ग भी बहाव की तेजी को कम करते है। इस तरह यह तेज वर्षा की बौछारो से गिरने वाले जल के बहाव की तेजी को हलका बना सकते है। किंतु यदि भारी वर्षा देर तक हो तो ये स्वय उसका शिकार बन जाते हैं।

बस्तियाँ और दूसरे इमारती ढाचे भी कुछ हद तक उस क्षेत्र को छोटा बना देते है, जिसमे पानी को मिट्टी के भीतर रिसने के लिए कम जगह मिल पाती है। इससे जमीन के ऊपर और अतिरिक्त जल इकट्ठा हो जाता है और इससे बाढ की सभावना और बढ जाती है। फिर बन कटाई से भी अधिक भूक्षरण होता है, जिससे ढालो पर पानी का बहाव और तेज हो जाता है।

नदी के सपाट हिस्सो मे कटी हुई मिट्टी जमा होती जाती है और इससे नदी के पाट की जलवहन क्षमता घट जाती है और फलस्वरूप बाढ की सभावना बढ जाती है। जो जल आमतौर पर हानि पहुचाता है, वह उस जल का ही तो एक छोटा सा अश होता हे, जो नदी मे आसानी से किनारो से बाहर फैले बिना बह जाता है। जलाशय, नहरो और अपवाहिकाओ को इस तरह से नियन्त्रित किया जा सकता है, कि बाढ का जल कम से कम हानि पहुचा सके।

एक सभावित उपाय और भी है, जिस पर अमल नही किया गया है। यह है, भूमिगत जलाशयो का निर्माण, जहा जल इकट्ठा किया जा सकता है। इस सभावित उपाय पर हम पहले ही विचार कर चुके है। किंतु अभी इस बात का पता लगाना है कि बाढ कम करने के लिए यह तरीका कितना असरदार हो सकता है। यदि यह तरीका अनुमान पर खरा उतरता है तो बाढ की समस्या को काफी हद तक हल समझिये।

इस प्रकार लगता यह है कि पहाडियो से तेज गति से आने वाले जल को रोकने के लिए बहुउद्देशीय जलाशयो का निर्माण हमारा मुख्य प्रयत्न होना चाहिए। लगता यह है कि मैदानो मे भूमि पर बह जाने वाले जल मे से एक अश को भूमिगत जलाशयो मे रोका जा सकता है।

बाढ की पूर्व चेतावनी

यदि बाढ के आने की पूव चेतावनी काफी समय पहले दे दी जाये तो जनधन को क्षति से बचाने के लिए सुरक्षा और बचाव के पूर्वोपाय किये जा सकते है। बाढ का पूर्वानुमान एक विशिष्ट क्रिया है। यह एक प्रकार का क्रियात्मक विज्ञान है, जिससे वर्षा और हर नदी के आवाह-क्षेत्र से बहने वाले जल के बीच सबध मालूम किया जाता है। स्पष्ट है कि इसके लिए क्षेत्र का पूरा विवरण और वर्षा का समय मे वितरण जैसी जानकारी बहुत महत्त्व पूर्ण है। इसके अलावा वर्षा से पहले आवाह-क्षेत्र (वह क्षेत्र जहाँ नदी अपना जल पाती है) के तलकी विशेषताओं की जानकारी भी महत्त्वपूण होती है। इसलिए मामला काफी जटिलहै, किंतु हल किया जा सकता है। नदी के ऊपरी भाग मे जल-विमर्जन को देख कर ही बाढ का पूर्वानुमान लगाया जा सकता है और नदी के निचले भाग के लिए सूझ-बूझ से कुछ अतर-गणना की जा सकती है।

बेशक बाढ के विभिन्न कारणो के बारे मे हमारी जानकारी अभी अधूरी है। इन कारणो के बीच आपसी क्रिया-प्रतिक्रियात्मक सबध भी है। एक स्थान का बेहतर जल-अपवहन, नदी के निचले भाग मे खतरनाक बाढ का कारण बन सकता है। इसलिए हमे इस पूरे तत्र को समझने का प्रयत्न करना चाहिए। हमे आवश्यक प्रतिबोधी तथ्य इकट्ठा करने और उन के आधार पर बडी सूझ-बूझ से प्रतिमान तैयार करने का प्रयत्न करना चाहिए। आशा है कि इससे हम अधिक विश्वसनीय पूर्वानुमान लगा सकेंगे और बाढ-नियत्रण के लिए इष्टतम कारवाई का निणय भी किया जा सकेगा।

बगाल की खाडी और अरब सागर से उठने वाले चक्रवातो की स्थिति और दिशा का पता रडारो से लगाया जा सकता है। यह चक्रवात तटवर्ती क्षेत्रो मे काफी नुकसान पहुचाते हैं। मौसम विज्ञान विभाग उनसे सभावित मार क्षेत्रो के बारे म चेतावनी देता है। यह चेतावनियाँ निश्चय ही बडी उपादेय सिद्ध होती हैं, विशेषकर मछली पकडने और जहाजरानी मे काम में लगे लागो के लिए।

जिस तरह बहुत समय पहले वर्षा के बारे में पूर्वानुमान नहीं लगाया जा सकता, उसी तरह आँकडो के आधार के अलावा किसी और आधार पर बहुत समय पहले बाढो के बारे म पूवानुमान नही लगाया जा सकता।

अनावृष्टि

सूखे का अथ है, सभावित वर्षा से कम वर्षा। सामान्य वर्षा से 75 प्रतिशत (या शायद 50 प्रतिशत से कम) कम वर्षा को अनावृष्टि की सज्ञा दी जाती है। अनावृष्टि की यह परिभाषा सटीक न होते हुए भी पर्याप्त है। किंतु हमे यह भी ध्यान रखना चाहिए कि फसलो के लिए वर्षा की कुल मात्रा के अलावा यह भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि यह वर्षा कितने समय तक, कितने कितने अतराल के बाद होती है। जरूरी नही कि वर्षा म मामूली सी कमी या बढोतरी का कृषि उत्पादकता से सीधा सबध हो। इसलिए वाछनीय तो यही होगा कि पूरे मौसम के दौरान होने वाली वर्षा के ऐसे सूचकाक तैयार किये जाये जो कृषि उत्पादकता से जुडे हो। अब चाहे यह सूचकाक किसी भी तरह के हो, वर्षा मे भारी कमी निस्सदेह अनावृष्टि का कारण बनती है। जब फसले सूखने लगती है तो वह अनावृष्टि की स्थिति ही होती है।

ऐसा मिट्टी में अपर्याप्त नमी के कारण होता है। किसान वर्षा की मात्रा की अपेक्षा मिट्टी म नमी की बात अधिक सोचता है। इसलिए वह अपने खेत में वर्षा मापने के लिए कोई पात्र नही रखता। वह अपने मोटे तरीके से मिट्टी मे नमी का अनुमान लगाता है (जो पर्याप्त होता है) और उसी के आधार पर निणय लेता और कारवाई करता है।

हम उन क्षेत्रो को वखूबी जानते है जहा अक्सर सूखा पडता है। सामान्य रूप से ये वे क्षेत्र हैं, जहा औसत वर्षा बहुत कम होती है। 20 स० मी० औसत वर्षा वाले क्षेत्र मे 15 से० मी० की कमी या वृद्धि से गभीर बाढ या गभीर सूखे की स्थिति पैदा हो सकती है। अचरज की बात है, किंतु है सही कि बाढ रेगिस्तानो मे आती है। कम औसत वर्षा के कारण रेगिस्तानो में जल की निकासी की अच्छी व्यवस्था नही होती, अर्थात वहा काफी सख्या मे प्राकृतिक नदी-नाले नही होते इसलिए तेज बौछारे बाढ की स्थिति पैदा कर सकती है। दूसरी तरफ वर्षा में 15 से० मी० की कमी सूखे का कारण बनती है।

फसलो की सुरक्षा

जब भी चाहे कृत्रिम रूप से वर्षा कर ले, इस तरह का कोई प्रभावी तरीका नही है। फसलो को बचाने के लिए कोई सभव हल है तो वह

है कि सिंचाई की सुविधाओ का विकास किया जाये। इन सुविधाओ का सूखे की अवधि मे अधिकतम उपयोग किया जा सकता है। यह तथ्य पजाव और हरियाणा के सदर्भ मे एकदम स्पष्ट हो जाता है, जो अपनी सिंचाई सुविधाओ का भरपूर उपयोग करके सुखे पर काबू पा लेते हैं।

यह समस्या तो उन शुष्क क्षेत्रो मे अधिक वास्तविक होती है, जहा वडे स्तर पर सिंचाई की सुविधाए नही हैं। यहा के वाशिदो ने वरसो के अभ्यास से ऐसे तरीके निकाल रखे है और रहने की ऐसी आदतें विकसित कर रखी हैं, जिससे उनमे परिस्थिति की आवश्यकताओ के अनुसार सूखे की स्थिति से अच्छे तरीके से निपटने की क्षमता पैदा हो गयी है। वे इस्तेमाल म आ सकने वाले अधिकतम जल को जमा करने, पानी की बरबादी को अधिक सीमित रखने और एकत्न जल का अधिकतम उपयोग करने का प्रयत्न करते हैं। इन क्षेत्रो मे इस सबध मे आधुनिक खोजो से भी काम लिया जा रहा है। पहाडी ढलानो से जल को एकत्र करके और बीच की बाधाए दूर करके रेगिस्तानो तक लाने और ऐसे स्थान पर एकत्न करने का प्रयत्न किया जा रहा है, जहा उसका उपयोग किया जा सके। खुले जलाशयो-तालो मे बाष्पी-करण की दर, जलमार्गो मे रिसाव की दर, मिट्टी की सतह मे से वाष्पीकरण की दर और फसलो मे जल की खपत घटाने के तरीको के बारे मे अनुसधान किया जा रहा है। सिंचाई के ऐसे साधनो का विकास किया जा रहा है, जिनमे जल का कम से कम अपव्यय हो और अधिकतम लाभ उठाया जा सके। अधिकतम कृषि उत्पादन के लिए उपलब्ध जल के प्रबध का नवीनतम क्षेत्र अनेक प्रतिभाशाली वैज्ञानिको का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर रहा है। फसले उगाने की नई प्रोद्योगिकी के क्षेत्र मे अनुसधान चल रहा है। इनसे ऐसी विधि भी सामने आ सकती है, जिससे हम हल्के खारी पानी से फसलो की सिंचाई कर सकें। ऐसे शुष्क क्षेत्रो मे पादपगृह लगाये जा रहे है, जहा ऊर्जा प्रचुर माता मे उपलब्ध है।

ऊपर बताये सभी उपाय बहुत अच्छे है, किंतु जब अपेक्षाकृत सहज उपाय चुक जायेंगे तो तभी इनमे से कुछ पर अमल किया जायेगा। ऐसे क्षेत्रो मे, जहा अतिरिक्त जल वाले क्षेत्रो से जल लाना सभव नही है, उपरलिखित

प्रोयोगिक साधनो मे से कुछ पर पहले से अमल किया जा रहा है। किंतु सामान्य रूप से श्रम और सामग्री की दृष्टि से यह प्रोद्योगिक साधन बहुत महगे पडते है। कुछ के लिए अत्याधुनिक प्रबध प्रणाली आवश्यक है। इनसे तो हम अत मे काम लेंगे। इनमे से कुछ केवल अनुसधान सबधी अजूबे है और उनका व्यवहारिक पक्ष बहुत ही सीमित है।

एक व्यवहारिक और अधिक प्रभावकारी हल है, जल बहुल क्षेत्रो से उन क्षत्रो मे लाना जहा उसकी आवश्यकता है। उदाहरणाथ, हिमालय क्षेत्रो से आने वाले अतिरिक्त जल से थार मरूभूमि की समस्या हल हो सकती है। राजस्थान नहर इसी दिशा मे एक प्रयत्न है। हो सक्ता है कि हमारी प्रणाली सर्वाधिक अनुकूल न हो, किंतु वैज्ञानिक दृष्टि से हमारी बुनियादी नीति निश्चय ही उचित जान पडती है।

रेगिस्तानी क्षेत्रो की सिचाई अपने साथ कुछ समस्याए भी लाती है। निकासी के पर्याप्त प्राकृतिक साधनो के अभाव मे सिचन जल बहुत अधिक परिमाण मे भूमि के भीतर रिस जाता है, जिससे धीरे-धीरे अतर्भौम जल स्तर ऊपर उठ जाता है और अत मे जल लग्नता की समस्या पैदा हो जाती है। इसके साथ ही सिचन-जल के बहुत अधिक वाष्पीकरण और मिट्टी मे केशिका-क्रिया से जल के ऊपर चढ आने से लवण के अवशेष रह जाते हैं, क्योकि अपर्याप्त वर्षा उन्हे बहाकर नही ले जा पाती। एक समय वह आता है कि मिट्टी इतनी लवण-युक्त हो जाती है कि उसमे फसल ही नही उगती। यही वडी जानी-पहचानी समस्याए है। किंतु जो समस्याए पचास वप बाद उठनी है, उनसे अभी से आतकित होने की आवश्यकता नही। इनमे से बहुत सी समस्याए अपना हल भी अपने साथ लाती है। किंतु इतना निश्चित है कि सिचन-जल के अधाधुध प्रयोग और साथ ही भूमिगत जल का स्तर अधिक ऊपर उठ आने से पहले उसका इस्तेमाल शुरू करके इन समस्याओ को काफी लम्बे अर्से तक टाला जा सकता है।

सार

बाढ और सूखा वर्षा के आधिक्य या कमी से उत्पन्न होते है। हमे ऐसे निर्माण-काय तैयार करने चाहिए जिनसे सीमित क्षेत्रो और थोडे समय मे बहुत अधिक वर्षा होने की स्थिति मे उस जल का प्रयोग सूखे की

मे किया जा सके। काम कठिन है, किंतु इसे करना जरूरी है। हमारे इजीनियर जानते है कि यह काम कैसे किया जा सकता है। इस समस्या के व्यवहारिक इजीनियरी हल मौजूद है। केवल इन कार्यो की अग्रता तय करने से ही मामला काफी हद तक हल हो जायेगा।

5

सभावनाओ की अन्विति

विकास कार्यों की कमी ही शायद अतीत मे हमारी गरीबी का मुख्य कारण था। किंतु विकास की गति उचित होते हुए भी आज की यथास्थिति हमारी सख्या मे निरतर वृद्धि के कारण है। जनसख्या में निरतर वृद्धि एक कठोर यथाथ है, जिसे कुछ समय तक हमारे साथ बने रहना है। चाहे जो भी हो, इसे हम परे नही हटा सकते।

जनसख्या की सबसे बडी आवश्यकता 'खाद्यान्न' की है। इसलिए जन-सख्या मे वृद्धि के साथ खाद्यान्न-उत्पादन भी बढाना बेहद जरूरी है। अधिक अन्न उपजाने के लिए हमे भूमि, जल, श्रम, कौशल, विज्ञान, इजीनियरी, प्रशासन और प्रबध की आवश्यकता है। पिछले तीन दशको मे हमने इन सभी क्षेत्रो मे प्रगति की है, किन्तु हम केवल प्रति व्यक्ति खपत को स्थिर रखने मे ही सफल हो पाये है। 600 लाख हेक्टेयर और भूमि पर खेती की जाने लगी है। अब कुल खेती योग्य भूमि 800 लाख हेक्टेयर है, जो हमारे भौगोलिक क्षेत्र की आधे से अधिक भूमि बैठती है। शेष भूमि पहाडो, जगलो, चरागाहो या बजरो से ढकी हुई है। परिस्थितिकीय सतुलन को असतुलित किये बिना और भूमि को खेती के नीचे लाने की अधिक गुजाईश नही है। हा, राजस्थान के कुछ हिस्सो मे अभी भी ऐसी भूमि मौजूद है, जो खेती के नीचे लायी जा सकती है। इस स्थिति मे मौजूदा खेतो की उपज बढाने पर ही हम मुख्य रूप से निर्भर करते है। उपज बढाने का सबसे महत्वपूर्ण निवेश जल है, यानी सिचाई। मानते है कि सिचाई अकेले भी

खाद्यान्न के मामले मे आत्म-निर्भरता की पूरी गारंटी नही है, किन्तु है यह सर्वाधिक अपेक्षित अनिवार्यता। उर्वरक और सुधरे बीज जैसे निवेशो से उपज तभी बढायी जा सकती है, जब सिचाई की पूरी गारंटी हो। सौभाग्य से सिचाई के लिए और अधिक जल उपलब्ध कराने की काफी सभावनाए मौजूद हैं। इसलिए अगले दो दशको मे इन्ही सभावनाओ के विकास पर जोर दिया जायेगा और इस तरह लगभग आधी कृषि भूमि तक सिचाई की सुविधाए पहुचा दी जायेंगी।

पूर्व उपलब्धिया

हमारे देश मे प्राचीन समय से फसलो की सिचाई की जाती रही है। जिस तरह का हमारे यहा मौसम है, उसे देखते हुए ऐसा करना जरूरी भी था। फिर जिस प्रकार की हमारे देश की भू-आकृति है, उसके अनुसार सिचाई की व्यवस्था सुगमता से की जा सकती थी। प्राचीन समय मे विकसित सिचाई की प्रणालियो से आज भी खूब काम लिया जा रहा है। कुओ से जल मनुष्य और पशुओ के द्वारा विभिन्न काम के सहज उपस्करो से खीचा जाता है। जहा जल को प्राकृतिक गर्त मे बाधा जा सकता है या नदी धारा को रोका जा सकता है वहाँ तालाबो से अब भी सिचाई की जाती है। बरसाती नदी के रास्ते पर कच्चे बाध बना कर उसका रास्ता रोका जाता है और पानी बाध के किनारो से निकलता है तो उससे सिचाई की जाती है। इस तरह की सिचाई को बाढ सिचाई कहा जाता है और भारत के कुछ क्षेत्रो मे सिचाई इसी तरह की जाती है, हालाकि यह थोडी खतरनाक सिचन प्रणाली है। बाढ मे आयी बडी नदियो के जल को नहरो मे भी डाल कर सिचाई की जाती रही है। किंतु बडी नदियो पर बाध बनाकर बहुमुखी विशाल जलाशयो का निर्माण हाल ही मे किया जाने लगा है।

पिछले तीन दशको के दौरान सिंचाई कार्यों के विकास के सभी क्षेत्रो मे हमने प्रशसनीय काम किया है। किंतु एक क्षेत्र मे हम पिछड गये हैं। हमारी बढती जनसख्या की आवश्यकताओ को यह सिचाई-कार्य कुछ सीमा तक पूरा नही कर पाये है। फलस्वरूप हमे औसतन प्रति वर्ष कई करोड टन अनाज आयात करना पडता है। इसके बावजूद अन्न उत्पादन मे हमारी

ा उल्लेखनीय रही है। अनाज का उत्पादन 5 करोड टन से कुछ कम
कर 10 करोड टन से कुछ अधिक तक बढा है। यह आशिक रूप
ड़े, मध्यम और छोटे दर्जे की उन सिचाई योजनाओ[1] का प्रतिफलन है,
ह हमारे इजीनियरो ने अपने हाथो मे लिया और पूरा किया है।
ाई के अतर्गत 200 लाख हेक्टेयर भूमि से लेकर अब लगभग 450
 हेक्टेयर भूमि, यानी दुगनी हो गयी है। किंतु यह विकास देश के सभी
ा मे समान नही हुआ है। इसके पीछे बहुत से कारण है। मुख्य कारण
ोकी-आर्थिक है, अर्थात सिंचाई काय का लागत/लाभ अनुपात। यह
 भू-आकार सबधी कारणो पर निभर करता है, जो गगा के मैदान मे
ा ही अनुकूल है। गगा के मैदान मे हिमालय से निकलने वाली नदिया
वप चलती है (हालाकि वर्षा ऋतु मे इनमे जल विसजन अधिकतम
ा हे)। हम नदी के मार्ग मे कोई बाधा (बाध या बधारा) खडी करते है
 रुके हुए पानी को नहर मे मोड देते हैं। मैदानो की हलकी ढाल के
ण जल नहरो और वितरिकाओ मे अपने गुरुत्व से बहता है और मोटी
 वाली कछारी मिट्टी से ढके विशाल क्षेत्रो पर जल फैल जाता है।
ारी मिट्टी मे नहरे और वितरिकाए खोदना अपेक्षाकृत सरल होता है।
री बहुत सी नहरे और वितरिकाए हजारो किलोमीटर बहती है और
े पूरे वप सिचाई के लिए पानी मिलता है। हमारी कुछ प्रमुख नहरें है,
हंद नहर (सतलुज), उपरि बारी दुआब नहर (रावी, पश्चिमी और
 यमुना नहरे, आगरा नहर (यमुना), उपरि और अवर गगा नहरे,
दा नहर (शारदा और घग्घर)। इन नहरो की क्षमता काफी अधिक है,
ु बरसात के मौसम और उसके बाद के महीनो मे हमारी नदियो मे
लब्ध प्रचुर जल का पूरा उपयोग यह नहरें नही कर पाती। इनका निर्माण
य आधार पर किया गया था और इनकी क्षमता इतनी ही रखी गई थी
वे जल की कमी के उस मौसम मे भी भरी-पूरी रहे, जब नदियो मे

[1] बडे, मध्यम और छोटे दर्जे की योजनाओ का यह वर्गीकरण लागत के आधार पर किया गया है। योजना की सिंचाई-क्षमता के आधार पर भी वर्गीकरण किया जा सकता है। दरअसल जल के कुल उपयोग से ही सिंचाई योजना का सबध बैठता है।

जल-विसर्जन कम रह जाता है। प्रति लागत ईकाई अधिकतम राजस्व अर्जित करने की दृष्टि से यह बात कुछ समझ आती है। किंतु यह बात नजरअंदाज नहीं की जा सकती कि इन नहरों की निर्मित क्षमता इतनी कम है कि व बरसात के मौसम में नदियों में विसर्जित जल का पूरा लाभ नहीं उठा सकती। गंगा नदी और उसकी सहायक नदियों में से निकाली गयी नहरों में यह कमी विशेष रूप से देखी जा सकती है, जिन पर अभी तक न तो कोई बांध बांधा गया है और न जलाशय बनाया गया है। इस पहलू को छोड़ भी दें तो यह बात बराबर बनी रहती है कि मोड़-नहरें सिंचाई के लिए सबसे कम व्यय में जल-उपलब्ध कराती हैं। इसीलिए हम नहरों को तरजीह देते हैं। कुछ स्थितियों में पंपों के जरिए नदी में से जल सीधे छोटी छोटी नहरों में डाल कर पास के खेतों को सींचना अधिक युक्तियुक्त पाया गया है। इस तरह की सिंचाई योजनाओं के अंतर्गत पंप आदि को तुरंत लगाया जा सकता है, किंतु यह अपेक्षाकृत महंगा पड़ता है।

हिमालय के अलावा और पर्वतों से निकलने वाली नदियों के मामले में स्थिति बहुत भिन्न है। उन नदियों में पहाड़ों पर जमी बर्फ पिघल कर पानी के रूप में नहीं आती, इसलिए वे गर्मी के मौसम में सूख जाती हैं। इन नदियों में से निकाली गयी बारहमासी नहरों को पूरे वर्ष भर जल से भरी रखने के लिए हमें बरसात के मौसम में जलाशयों और तालाबों में बाढ़ के जल को रोकना पड़ता है। तालाबों से मिलने वाले जल से चलने वाली छोटी-छोटी नहरें आंध्र प्रदेश, कर्नाटक और तमिलनाडु तथा सीमित हद तक कुछ दूसरे राज्यों में भी लोकप्रिय हैं। किंतु बड़ी बारहमासी नहरों को बड़े बांध वाले जलाशयों से ही पानी मिल [illegible] सकता है जैसे [illegible]
नागार्जुन सागर (जो अभी पूरा होना है [illegible]) सागर भी
[illegible] में उसका लाभ पर कृषि में [illegible] वहीं
[illegible] है। यही कारण है कि सिंचाई [illegible] के [illegible]
असाधारण वृद्धि हुई है। कुल सिंचाई [illegible]
पश्चिमी उत्तर प्रदेश,
है। पूर्वी उत्तर प्रदेश [illegible]
बिहार में भी कुछ सीमा

गया है।

स्वतंत्रता के बाद के समय में अनेक बडी बहुमुखी नदी-घाटी योजनाओ पर निर्माण काम प्रारभ किया गया और उन्हे पूरा किया गया। भाखडा नगल, दामोदर घाटी, हीराकुड, रिहद, कोसी, तुगभद्रा और चबल जैसी ऐसी कुछ परियोजनाए हैं, जिनके बारे हम अक्सर सुनते रहते है। ये परियोजनाए इजीनियरो के अनूठे कारनामे हैं। यह तीन उद्देश्यो की पूर्ति करती हैं सिंचाई, शक्ति-उत्पादन और बाढ-नियत्रण। मछली पालन, जल परिवहन, मनोरजन, भू सरक्षण, वन लगाना आदि भी इन परियोजनाओ के उद्देश्यो में शामिल हैं।

बडी परियोजनाओ के निर्माण में सबसे बडी समस्या बहुत लबे समय के लिए बडे स्तर पर धन लगाने की है (जिसमें विदेशी मुद्रा का भी काफी बडा अश होता है)। बडी परियोजनाओं का निर्माण दस या उससे अधिक वर्षों में पूरा होता है। इन पर काम पूरा होने के बाद ही यह उस क्षेत्र को खुशहाल (अपेक्षाकृत) बना देती है। यदि हमारी कुछ प्रमुख योजनाओ पर काम रोक दिया जाए तो लाखो लोग भूखे मर जायेंगे।

हाल ही मे हमारे कुछ प्रमुख जलाशयो मे तेजी से गाद भरी जाने के बारे मे बडी चिंता उत्पन्न हुई है। इसके कारणों का पता लगाने का प्रयत्न किया जा रहा है। इसे दूर करने के लिए वनरोपण और मिट्टी स्थिरीकरण जैसे कुछ पारपरिक उपायो पर कार्य प्रारभ किया गया है।

आशिक उपयोग

आप सोचेंगे कि हर सिंचाई-परियोजना इस तरह तैयार की जाती है कि उसके अतगत सिंचाई के लिए मिल सकने वाले जल की हर बूद का उपयोग हो जायेगा। किंतु अनुभव से पता चलता है कि इस लक्ष्य को पाने मे कुछ अडचने पेश आती हैं। तकनीकी और आर्थिक कारण इसके पीछे है। तक्नीकी अडचन इस कारण पदा होती है कि परियोजना के सभी अग एक साथ पूरे नही होते। हो सकता है कि नहरे और वितरिकाए तैयार हो, किंतु क्षेत्र-वाहिकाए तैयार न हो, जो जल को खेतो तक ले जाती है। यह भी हो सकता है कि किसानो ने अपने खेतो को सही तरीके से समतल न किया हो।

जल-विसर्जन कम रह जाता है। प्रति लागत ईकाई अधिकतम राजस्व अर्जित करने की दृष्टि से यह बात कुछ समझ आती है। किंतु यह बात नजरअदाज नही की जा सकती कि इन नहरो की निर्मित क्षमता इतनी कम है कि वे बरसात के मौसम मे नदियो मे विसर्जित जल का पूरा लाभ नही उठा सकती। गगा नदी और उसकी सहायक नदियो मे से निकाली गयी नहरो मे यह कभी विशेष रूप से देखी जा सकती है, जिन पर अभी तक न तो कोई बाध बाधा गया है और न जलाशय बनाया गया है। इस पहलू को छोड भी दे तो यह बात बराबर बनी रहती है कि मोड-नहरें सिचाई के लिए सबसे कम व्यय मे जल-उपलब्ध कराती हैं। इसीलिए हम नहरो को तरजीह देते है। कुछ स्थितियो मे पपो के जरिए नदी मे से जल सीधे छोटी-छोटी नहरो मे डाल कर पास के खेतो को सीचना अधिक युक्तियुक्त पाया गया है। इस तरह की सिचाई योजनाओ के अतगत पपो आदि को तुरत लगाया जा सकता है, किंतु यह अपेक्षाकृत महगा पडता है।

हिमालय के अलावा और पर्वतो से निकलने वाली नदियो के मामले मे स्थिति बहुत भिन्न है। उन नदियो मे पहाडो पर जमी बर्फ पिघल कर पानी के रूप मे नही आती, इसलिए वे गर्मी के मौसम मे सूख जाती है। इन नदियो मे से निकाली गयी बारहमासी नहरो को पूरे वर्ष भर जल से भरी रखने के लिए हमे बरसात के मौसम मे जलाशयो और तालावो मे बाढ के जल को रोकना पडता है। तालावो से मिलने वाले जल से चलने वाली छोटी-छोटी नहरें आध्र प्रदेश, कर्नाटक और तमिलनाडु तथा सीमित हद तक कुछ दूसरे राज्यो मे भी लोकप्रिय है। किंतु बडी बारहमासी नहरो को बडे बाध वाले जलाशयों से ही पानी दिया जा सकता है जैसे तुगभद्रा या नागार्जुन सागर (जो अभी पूरा होना शेष है)। दूसरी तरफ भूमिगत जल सहजता से उपलब्ध होने पर कूपो से सिचाई की व्यवस्था कही भी की जा सकती है। यही कारण है कि पिछले दशक मे भूमिगत जल के उपयोग मे असाधारण वृद्धि हुई है। कूप सिचाई के क्षेत्र में सबसे अधिक विकास पश्चिमी उत्तर प्रदेश, पजाब, हरियाणा तमिलनाडु और गुजरात में हुआ है। पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, राजस्थान और पश्चिमी बगाल में भी कुछ सीमा तक सिचाई के इस साधन का विकास किया

गया है ।

स्वतत्रता के बाद के समय मे अनेक बडी बहुमुखी नदी-घाटी योजनाओ पर निर्माण काय प्रारभ किया गया और उन्हे पूरा किया गया । भाखडा नगल, दामोदर घाटी, हीराकुड, रिहद, कोसी, तुगभद्रा और चबल जैसी ऐसी कुछ परियोजनाए हैं, जिनके बारे हम अक्सर सुनते रहते है । ये परियोजनाए इजीनियरो के अनूठे कारनामे है । यह तीन उद्देश्यो की पूर्ति करती हैं सिचाई, शक्ति-उत्पादन और बाढ नियत्रण । मछली पालन, जल परिवहन, मनोरजन, भू सरक्षण, वन लगाना आदि भी इन परियोजनाओ के उद्देश्यो मे शामिल हैं ।

बडी परियोजनाओ के निर्माण मे सबसे बडी समस्या बहुत लबे समय के लिए बडे स्तर पर धन लगाने की है (जिसमें विदेशी मुद्रा का भी काफी बडा अश होता है) । बडी परियोजनाओ का निर्माण दस या उससे अधिक वर्षो में पूरा होता है । इन पर काम पूरा होने के बाद ही यह उस क्षेत्र का खुशहाल (अपेक्षाकृत) बना देती है । यदि हमारी कुछ पमुख योजनाओ पर काम रोक दिया जाए तो लाखो लोग भूखे मर जायेंगे ।

हाल ही में हमारे कुछ प्रमुख जलाशयो में तेजी से गाद भरी जाने के बारे मे बडी चिंता उत्पन्न हुई है । इसके कारणो का पता लगाने का प्रयत्न किया जा रहा है । इसे दूर करने के लिए वनरोपण और मिट्टी स्थिरीकरण जैसे कुछ पारपरिक उपायो पर कार्य प्रारभ किया गया है ।

आशिक उपयोग

आप सोचेंगे कि हर सिंचाई-परियोजना इस तरह तैयार की जाती है कि उसके अतगत सिचाई के लिए मिल सकने वाले जल की हर बूद का उपयोग हो जायेगा । किंतु अनुभव से पता चलता है कि इस लक्ष्य को पाने में कुछ अडचने पेश आती हैं । तकनीकी और आर्थिक कारण इसके पीछे है । तकनीकी अडचन इस कारण पदा होती है कि परियोजना के सभी अग एक साथ पूरे नही होते । हो सकता है कि नहरें और वितरिकाए तैयार हो, किंतु क्षेत्र-वाहिकाए तैयार न हो, जो जल को खेतो तक ले जाती है । यह भी हो सकता है कि किसानो ने अपने खेतो को सही तरीके से समतल न [

क्योकि समतल होने पर जल अपने गुरुत्व से बहता है और सिंचाई के लिए जल मिलता है। इस तरह की समस्याओ के हल होने मे समय लगता है।

आर्थिक कारणो से नहरी जल का पूरा उपयोग न कर पाने के पीछे मुख्यतया किसान की आर्थिक असमर्थता होती है। सरकार इस समस्या को हल करने के लिए बहुत से खेतो तक वितरण प्रणाली (कमान क्षेत्र) को फैलाने का प्रयत्न करती है। इससे अधिक जल बेचने मे सरकार सफल हो जाती है। किंतु इस नीति मे कुछ कमियाँ भी है। पहली कमी तो यह है कि नहरो के जाल के अनावश्यक रूप से बडे क्षेत्र पर फैले होने के कारण रिसाव और वाष्पीकरण के कारण अपेक्षाकृत अधिक जल व्यर्थ हो जाता है। दूसरे, बडे क्षेत्र पर फैले फैलाव के कारण जल की पूर्ति कुछ सीमा तक अनिश्चित और अविश्वसनीय हो जाती है, क्योकि इसके ग्राहक इतने अधिक हो जाते है कि सब को जल देना कठिन हो जाता है। किंतु हाल ही मे इस स्थिति मे कुछ परिवर्तन हुआ है। सिंचाई के जल की माग बहुत अधिक बढ गयी है और उपयोग का स्तर भी ऊचा हो गया है। अब जल का मूल्य चुका कर उसका उपयोग करने वाले ग्राहको की सख्या काफी बढ गयी है। अब ग्राहको की कमी के कारण नही, बल्कि तकनीकी कारणो से जल की उपयोगिता मे कमी रहती है।

आज कूप और नल-कूप जैसे भूमिगत जल का उपयोग करने वाले साधन अधिकतर व्यक्तियो के निजी हाथो मे हैं। वे तकनीकी दिक्कतो (वास्तव मे, बडे स्तर पर अनावश्यक रूप से) पर पार पाने का प्रयत्न करते हैं। किन्तु उन्होने जिस क्षमता के जल उपकरण लगा रखे है, उनका उपयोग वे उस स्तर तक बहुत कम कर पाते हैं, क्योकि निजी कूप या नलकूप मुख्य रूप से अपने खेतो की सिंचाई की छोटी माग पूरी करने के लिए चलाया जाता है। अधिकतर समय के लिए उसमे से पानी खीचा ही नही जाता। इस तरह निजी भूमिगत जल पूर्ति से किसान को जल तो निश्चित रूप से समय पर और आवश्यक परिमाण मे मिल जाता है, किंतु बहुत बडी राष्ट्रीय लागत पर। यह अय्याशी तब तक बढती रहेगी, जब तक राज्यो के नलकूप-कार्यक्रम खूब प्रचलित नही हो जाते और कुशलता का उचित स्तर प्राप्त नही कर लेते। फिलहाल तो यह होना चाहिए कि मौजूदा निजी कूप (पप सैटो

के सहित या रहित) और नलकूप अपने पडोसी खेतो की जल-मागो का पूरा करने का प्रयत्न करे और इस तरह अपने कूपो को और अधिक समय के लिए चलायें। फिर शायद यह भी आवश्यक हो गया है कि भूमिगत जल की प्रोद्योगिकी के क्षेत्र मे नये आयामो का पता चलाया जाये।

छोटे किसानो (1 हेक्टेयर) की माग को बहुत ही सस्ते मे उचित रूप से पूरा करने वाले भूमिगत जलपूर्ति साधनो की खोज करने की आवश्यकता है। सबसे बढिया तो यह रहेगा कि इस तरह का उपकरण वायु या सूर्य की ऊर्जा से चलने वाला हो। किंतु वायु और सौर ऊर्जा मे यह कमी है कि यह बहुत फैलाव के साथ उपलब्ध होती है और निरतर नही मिल पाती। इस कारण वायु और सूय की ऊर्जा से चलने वाले यत्र सामान्य तौर पर महगे, असुविधाजनक और भारी-भरकम होते है। अभी तक यह यत्र व्यवहारिक सिद्ध नही हुए हैं। अभी तक बाहुबल ही हमारा सबसे विश्वसनीय सहारा है। सोचे तो बात बडी खेदजनक लगती है, लेकिन और कोई चारा भी नही है।

शक्ति का उपयोग

कूप, नलकूप (उथले और गहरे), तालाब और लिफ्ट स्कीम जैसी छोटी परियोजनाओ से सिंचाई के विकास मे हम बहुत अच्छी तरह से सफल रहे हैं। इस क्षेत्र मे निजी, सामुदायिक और सरकारी स्तरो पर विकास चलता रहेगा। कुछ क्षेत्रो मे भूमिगत जल विकास की योजनाए बहुत तेजी से विकसित की जा रही हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि मौजूदा स्थितियो मे यही सबसे उचित और सही बैठती हैं। इस दिशा मे सरकारी नीति भी यही है और उसी से ऐसा सभव हुआ है। अपने देश मे ही आसानी से उपलब्ध प्रोद्योगिकी ने कूपो और नलकूपो को लगाने का काम बहुत ही आसान कर दिया है और इन्हे लगाने मे समय भी बहुत कम लगता है। देहाती इलाको मे बिजली के विस्तार और डीजल तथा आसान ऋणो के सहजता से उपलब्ध होने के कारण औसत किसान भी पप वाला कूप और नलकूप लगा रहा है। यह रुझान जारी रहेगा तथा और अधिक जोर पकडेगा। आशा की जा सकती है कि अगले बीस वर्षो के दौरान या उससे पहले ही,

300-400 लाख हेक्टेयर भूमि की सिंचाई भूमिगत जल से की जा सकेगी। और शायद यही अतिम लक्ष्य भी है।

वेशक नलकूपो की सख्या मे भी तेजी से वृद्धि हो रही है फिर भी भूमिगत जल से अधिकाश सिचाई आज जमीन मे खोदे गये कूपो से ही की जा रही है। आगे आने वाले समय मे भी इस स्थिति मे कोई क्रातिकारी परिवर्तन नही होने वाला है। हा, भविष्य मे कूप अधिक गहरे होगे और वे पशु-शक्ति की अपेक्षा पपो से चलाये जायेगे। दोनो ही स्थितियो मे हम भूमिगत जल का इष्टतम सीमा तक उपयोग कर सकेगे।

इस विषय मे आकडे उपलब्ध नही है कि छोटे और बडे तालाबो से अधिक से अधिक कितनी भूमि की सिंचाई की जा सकती है। बहुत से मौजूदा तालावो मे गाद जम रही है और उनकी जलधारिता क्षमता कम होती जा रही हैं। कुछ व्यवहारिक कठिनाईयो के बावजूद गाद निकालने की कारवाई प्रारभ की जानी चाहिए।

हमने हाल ही मे सूखाग्रस्त क्षेत्रो मे बडी सख्या मे तालाबो का निर्माण किया है। इनमे से कुछ को 'परिस्रवण' तालाबो की सज्ञा दी गयी है। इनसे भूमिगत जल के पुनर्जात परिमाण मे वृद्धि होती है और इससे नदी के निचले क्षेत्र मे कूपो मे अधिक जल उपलब्ध होता है। वसे भी उनकी सामान्य जलधारिता क्षमता इतनी कम होती है कि इस दिशा म और अधिक प्रयत्न का कोई औचित्य नही। हा, राहत कार्यों के अतर्गत इस तरह का प्रयत्न ठीक रहेगा।

कोकण मे एक और काम किया जाता है। वारिश के मौसम के अत मे नदियो पर छोटे-छोटे वाध वना दिये जाते हैं। इससे भमिगत जल को बहुत अधिक वह जाने मे रोकने मे मदद मिलती है। नदी मे एकत्र जल को पप-सेटो के जरिए या व्यक्तिगत तरीको से खीच कर सिंचाई की जाती है। इस प्रकार की लघु योजनाए भविष्य मे लोकप्रिय होगी। इन लघु याजनाआ की सख्या बढने पर इनका क्या प्रभाव होगा, इसका अनुमान लगाना कठिन ह। निस्सदेह यह लाभकर है और लागत की तुलना मे इनसे लाभ भी काफी अधिक मिलने की सभावना ह।

अगले दो दशको के दौरान इस तरह की अनेक बडी और सैकडा मझोली योजनाए पूरी होने की सभावनाए है। हिमालय से निकलने वाली नदिया

मे से अभी भी साधारण नहरे और निकाली जा सकती है। अभी यह सभावना पूरी तरह से चुकी नही हैं। शारदा सहायक परियोजना पर भी अभी काम चल रहा है और इससे घग्घर नदी के पानी का उपयोग किया जा सकेगा। यह परियोजना गगा नहर की तुलना मे लगभग दुगनी भूमि को सिंचाई के लिए पानी देगी। इसके अलावा खरीफ फसलो की सिंचाई के लिए बाढ के जल का रुख भी मोडा जा सकता है। चाहे इस तरह का काय इतना लाभकर नही प्रतीत होता है किंतु इसमे छुपी सभावनाए असीमित हैं। बेशक हिमालय से निकलने वाली नदियो पर चलने वाले निर्माण कार्यो का विकास जारी रहेगा, लेकिन साथ ही नर्मदा, गोदावरी, कृष्णा और दक्षिण पठार मे कई राज्यो से होकर बहने वाली नदियो पर विकास कार्यो मे तेजी देखने को मिलेगी। नदियो के जल के बटवारे के अतर्राजकीय विवादो के कारण रुकी पडी परियोजनाओ पर निश्चय ही विवाद निपटने पर निर्माण कार्य प्रारम्भ होगा और जहा भी इनमे कोई सशोधन करना आवश्यक होगा उचित सशोधन भी कर दिया जायेगा। अनेक बहुमुखी योजनाए हाथ मे ली जायेगी, जिनके अतर्गत बाध, नहरे, विद्युत गृह और लिफ्ट स्कीम का निर्माण शामिल होगा। सबधित राज्य सरकारो ने इन योजनाओ की रूप-रेखा पहले से तैयार कर रखी है। इन योजनाओ पर काम शुरू होने पर राष्ट्रीय साधनो पर बेहद जोर पडेगा और इसके लिए किन्ही और क्षेत्रो मे हमे कुछ त्याग करना पडेगा। 21 वी शताब्दी मे प्रवेश करने पर 1000 लाख हेक्टेयर भूमि की सिंचाई हो रही होगी और हमारी वार्षिक जल-खपत 80-90 एम एच एम तक बढ जायेगी। यह अ्भुत सफलता इजीनियरो, प्रशासको, प्रबधको, और समूचे राष्ट के प्रयत्नो के फलस्वरूप ही सभव होगी। इस दिशा मे असफलता हमारे लिए घातक होगी। राष्ट्रीयता के जोश के साथ-साथ "उत्तरजीविता" की इच्छा हमे इस लक्ष्य की ओर प्रेरित करती रहेगी। जनसख्या मे करोडो लोगो की निरतर वृद्धि के कारण करोडो हाथो को नियमित और लाभकर रोजगार देने का एक-मात्र हल यही है कि सिंचाई का प्रसार किया जाये और कृपि को बढाया जाये। स्वैच्छा से (अनिवाय रूप से) परिवार नियोजन होने पर भी जन-सख्या और उसके दबावो को स्थिर होने मे कई दशक लग जाएगे। लेकिन इस दौरान हम खाद्यान्न की कमी को जनसख्या की वृद्धि पर हावी नही

300-400 लाख हेक्टेयर भूमि की सिंचाई भूमिगत जल से की जा सकेगी। और शायद यही अतिम लक्ष्य भी है।

बेशक नलकूपो की सख्या मे भी तेजी से वृद्धि हो रही है फिर भी भूमिगत जल से अधिकाश सिंचाई आज जमीन मे खोदे गये कूपो से ही की जा रही है। आगे आने वाले समय मे भी इस स्थिति मे कोई क्रातिकारी परिवर्तन नही होने वाला है। हा, भविष्य मे कूप अधिक गहरे होगे और वे पशु-शक्ति की अपेक्षा पपो से चलाये जायेगे। दोनो ही स्थितियो मे हम भूमिगत जल का इष्टतम सीमा तक उपयोग कर सकेंगे।

इस विषय मे आकडे उपलब्ध नही है कि छोटे और बडे तालाबो से अधिक से अधिक कितनी भूमि की सिंचाई की जा सकती है। बहुत से मौजूदा तालाबो मे गाद जम रही है और उनकी जलधारिता क्षमता कम होती जा रही है। कुछ व्यवहारिक कठिनाईयो के बावजूद गाद निकालने की कारवाई प्रारभ की जानी चाहिए।

हमने हाल ही मे सूखाग्रस्त क्षेत्रो मे बडी सख्या मे तालाबो का निर्माण किया है। इनमे से कुछ को 'परिस्रवण' तालाबो की सज्ञा दी गयी है। इनसे भूमिगत जल के पुनर्जात-परिमाण मे वृद्धि होती है और इससे नदी के निचले क्षेत्र मे कूपो मे अधिक जल उपलब्ध होता है। वसे भी उनकी सामान्य जलधारिता क्षमता इतनी कम होती है कि इस दिशा मे और अधिक प्रयत्न का कोई औचित्य नही। हा, राहत कार्यों के अतर्गत इस तरह का प्रयत्न ठीक रहेगा।

कोकण मे एक और काम किया जाता है। बारिश के मौसम के अत मे नदियो पर छोटे-छोटे बाध बना दिये जाते हैं। इससे भमिगत जल को बहुत अधिक बह जाने से रोकने मे मदद मिलती हे। नदी मे एकत्र जल को पप-सेटो के जरिए या व्यक्तिगत तरीको से खीच कर सिंचाई की जाती है। इस प्रकार की लघु योजनाए भविष्य मे लोकप्रिय होगी। इन लघु योजनाओ की सख्या बढने पर इनका क्या प्रभाव होगा, इसका अनुमान लगाना कठिन है। निस्सदेह यह लाभकर है और लागत की तुलना मे इनसे लाभ भी काफी अधिक मिलने की सभावना ह।

अगले दो दशको के दौरान इस तरह की अनेक बडी और सैकडो मझौली योजनाए पूरी होने की सभावनाए हैं। हिमालय से निकलने वाली नदियो

मे से अभी भी साधारण नहरे और निकाली जा सकती है। अभी यह सभावना पूरी तरह से चुकी नही है। शारदा सहायक परियोजना पर भी अभी काम चल रहा है और इससे घग्घर नदी के पानी का उपयोग किया जा सकेगा। यह परियोजना गगा नहर की तुलना मे लगभग दुगनी भूमि को सिंचाई के लिए पानी देगी। इसके अलावा खरीफ फसलो की सिचाई के लिए बाढ के जल का रुख भी मोडा जा सकता है। चाहे इस तरह का कार्य इतना लाभकर नही प्रतीत होता है किंतु इसमे छुपी सभावनाए असीमित हैं। बेशक हिमालय से निकलने वाली नदियो पर चलने वाले निर्माण कार्यो का विकास जारी रहेगा, लेकिन साथ ही नमदा, गोदावरी, कृष्णा और दक्षिण पठार मे कई राज्यो से होकर बहने वाली नदियो पर विकास कार्यो मे तेजी देखने को मिलेगी। नदियो के जल के बटवारे के अतर्राजकीय विवादो के कारण रुकी पडी परियोजनाओ पर निश्चय ही विवाद निपटने पर निर्माण कार्य प्रारम्भ होगा और जहा भी इनमे कोई सशोधन करना आवश्यक होगा उचित सशोधन भी कर दिया जायेगा। अनेक बहुमुखी योजनाए हाथ मे ली जायेगी, जिनके अतगत बाध, नहरें, विद्युत गृह और लिफ्ट स्कीम का निर्माण शामिल होगा। सबधित राज्य सरकारो ने इन योजनाओ की रूप-रेखा पहले से तैयार कर रखी है। इन योजनाओ पर काम शुरू होने पर राष्ट्रीय साधनो पर वेहद जोर पडेगा और इसके लिए किन्ही और क्षेत्रो मे हमे कुछ त्याग करना पडेगा। 21 वी शताब्दी मे प्रवेश करने पर 1000 लाख हेक्टेयर भूमि की सिंचाई हो रही होगी और हमारी वार्षिक जल-खपत 80-90 एम एच एम तक बढ जायेगी। यह अ्भुत सफलता इजीनियरो, प्रशासको, प्रबधको, और समूचे राष्ट के प्रयत्नो के फलस्वरूप ही सभव होगी। इस दिशा मे असफलता हमारे लिए घातक होगी। राष्ट्रीयता के जोश के साथ-साथ "उत्तरजीविता" की इच्छा हमे इस लक्ष्य की ओर प्रेरित करती रहेगी। जनसख्या मे करोडो लोगो की निरतर वृद्धि के कारण करोडो हाथो को नियमित और लाभकर रोजगार देने का एक-मात्र हल यही है कि सिंचाई का प्रसार किया जाये और कृषि को वढाया जाये। स्वेच्छा से (अनिवाय रूप से) परिवार नियोजन होने पर भी जन-सख्या और उसके दवावो को स्थिर होने मे कई दशक लग जाएगे। लेकिन इस दौरान हम खाद्यान्न की कमी को जनसख्या की वृद्धि पर हावी नही

होने दे सकते। हमारे पास बढने के लिए एक ही दिशा बची है, आगे बढने की दिशा। फिर "परिस्थितिकीय हौए" को भी हमे इतना बढा-चढा कर नही दिखाना चाहिए। इस डर से विकास काय रोक देने से हमारा काय कतई नही चलेगा। सिचाई सुविधाओ मे वृद्धि अनिवाय है और यह वृद्धि तेज रफ्तार से होनी चाहिए। विकास के पीछे सूझ-बूझ का होना भी जरूरी है।

6
अमृत

जब हमे प्यास लगती है तो हम एक गिलास पानी लेते है और अपने कंठ मे उडेल लेते हैं। इससे प्यास तो बुझती ही है, शरीर मे अनेक महत्त्वपूर्ण शारीरिक प्रक्रियाए भी प्रारभ हो जाती है। यह जल अनेक जीव-विषो को समेटता हुआ शरीर से बाहर निकल जाता है।

जब हम पानी पीते है तो यह सीधा हमारे शरीर मे चला जाता है (जबकि दूसरी तरफ अन्न को पहले देखा जाता है, साफ किया जाता है और फिर पकाया जाता है)। इसलिए इसका स्वच्छ होना अत्यन्त अनिवार्य है। यह जल व्याधिजनक पदार्थो (रोग पैदा करने वाले जीवाणुओ) से मुक्त होना चाहिए और इसमे जीव-विषो या लवणो की अतिरिक्त मात्रा नही होनी चाहिए। अनेक रोगो, महामारियो और मौतो का कारण दूषित जल होता है। इन सब बातो से स्पष्ट है कि सिचाई के लिए जल की अपेक्षा पीने का स्वच्छ जल उपलब्ध कराना अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण है। लेकिन हमने सिचन जल पर पहले इसलिए विचार किया है, क्योकि इसकी आवश्यकता बडे परिमाण मे होती है। गेहू या धान का एक दाना पैदा करने के लिए जल की कई हजार बूदे लगती है। मनुष्य की दैनिक खाद्यान्न-आवश्यकता की पूर्ति के लिए अनेक टन जल की खपत होती है, जबकि इसकी तुलना मे मनुष्य की प्रतिदिन की जल आवश्यकता बहुत ही नगण्य है। यदि हम सिंचाई के लिए जल उपलब्ध करा सके तो पीने के जल की पूर्ति के लिए बस जरा सा प्रयत्न और करना होगा। किंतु पीने के

जल की आवश्यकता बडी ही नाजुक किस्म की है और इसलिए आगे के लिए नही टाली जा सकती। इसलिए जहा भी जरूरत हुई है और सभव हो सका है, पीने का जल ट्रको से ढोकर वहा तक पहुचाया गया है। फसलें उगाने के लिए हमने कभी भी ट्रको मे पानी नही ढोया।

जहा भी कोई बस्ती है, वहा पानी का कोई न कोई स्रोत—कुआ, तालाब, नदी, सोता, झील, नहर—अवश्य होता है। कभी-कभी यह स्रोत सूख जाता है और पीने के पानी तक पहुच कठिन हो जाती है। कभी पानी ही खराब होता है। *लोग इन दोनो दिक्कतो के साथ जीने की आदत डाल लेते हैं।* किंतु यह भी अकाटय तथ्य है कि यदि इन्हे स्वच्छ जल सहजता से उपलब्ध होता तो उनका स्वास्थ्य, उत्पादकता और जीवन शक्ति कही बेहतर होती। सरकार और अनेक सामाजिक सगठन इस तथ्य को अच्छी तरह जानते हैं और वे ईमानदारी से अपनी ओर से जो कर सकते हैं, करने की कोशिश करते है। लेकिन वे अभी तक इस समस्या की सतह ही छू सके हैं। समस्या वास्तव मे बहुत बडी है। लगभग 6 लाख गाव पूरे देश मे बिखरे हुए हैं। इनमे से एक लाख से अधिक गावो मे गर्मी के उन महीनो मे गभीर कठिनाई उत्पन्न हो जाती है, जब जल के स्थानीय स्रोत सूख जाते हैं। कुछ स्थानो पर गहरे कुए बनाकर इस समस्या का हल किया जा सकता है। किंतु अनेक स्थानो पर इस समस्या का कोई सहज हल नही है। किसी पहाडी की ढलान या उसकी चोटी पर बसे पचास परिवारो को पीने का जल उपलब्ध कराने के लिए कोई क्या कर सकता है।

पीने का जल

पीने का जल हम अनेक स्रोतो से प्राप्त करते हैं। कुछ स्रोत अच्छे होते है, कुछ कम अच्छे होते है और कुछ बुरे और कुछ स्रोत तो एकदम ही खतरनाक होते ह। इनका अच्छा या बुरा हाना वहा के लोगो के स्वास्थ्य, जीवन शक्ति और आयु काल से परिलक्षित होता है।

वैज्ञानिक दृष्टि से आसवित जल सबसे अधिक स्वच्छ होता है। लेकिन पीने के लिए यह अच्छा नही होता। यह जल स्वादहीन होता है। यही बात वर्षा के जल के साथ है। इसका कारण यही है कि उसमे भी खनिज बहुत

कम मात्रा मे घुले होते है। वर्षा का जल पीने मे तभी अच्छा लग सकता है जब उसमे मिट्टी से प्राप्त होने वाले अनेक खनिज अपेक्षित मात्रा मे मिला दिये जाये। ऐसा जल पीने की हमे आदत हे और यही हमे पीने को मिलता भी हे।

इस विषय मे कई राय हो सकती हे कि पीने के "आदर्श" जल मे क्या-क्या होता ह। लेकिन इस बिषय मे सभी एकमत है कि कौन-सा पानी पीने "योग्य" हे और कौन-सा पानी "बुरा" है। विश्वास के साथ कहा जा सकता हे कि रोगाणुओ, अधिक मात्रा मे लवण और जीव-विषो से युक्त जल पीने "योग्य" होना चाहिए। किंतु अधिक मात्रा किसे कहा जा सकता है और कितनी मात्रा स्वीकार्य और लाभप्रद है – यह कहना कठिन है। इन प्रश्नो के उत्तर जन-स्वास्थ्य-अभियात्रिक जानते है। इनके अतर्राष्ट्रीय मानक निर्धारित ह। किंतु जहा तक हमारा सबध है, अतर्राष्ट्रीय मानक केवल पुस्तको तक ही सीमित ह, जलपूर्ति के लिए इन मानको का बहुत ही कम खयाल किया जाता हे। यदि उपलब्ध जल इन निर्धारित मानको पर खरा उतरता है तो बहुत अच्छी बात है। लेकिन अगर खरा न उतरे तो [illegible] जल पूर्ति को तथाकथित निर्धारित मानको के अनुरूप सशोधित करना हमारे लिए सभव नही है (पीने के जल की सीमित पूर्ति के लिए ही आसवन, रासायनिक ससाधन तथा विपरीत परासरण जैसी प्रक्रियाए हमारी जेब के बूते से बाहर की चीजे हैं)। हम निश्चय से नहीं कह सकते कि इस मामले मे होने वाली हर कमी के लिए हमे कितनी कीमत चुकानी पड रही है। कुछ स्थितियो मे क्षति स्पष्ट है। लेकिन कुछ मामलो मे इस क्षति का अनुमान लगाना कठिन है। यह भी सभव है कि [illegible] वहा हो ही ना।

लगता यह है कि अच्छे किस्म के जल मे लवणो का बहुत ही सूक्ष्म सतुलन होना चाहिए। उदाहरणार्थ, कहा जाता है कि फ्लुओराइड दातो के लिए अच्छा होता है, इसलिए पीने के [illegible] लिटर जल मे 1 मिलिग्राम फ्लूराइड का मिश्रण सही रहेगा ([illegible] भोजन मे यह [illegible] से ही पर्याप्त मात्रा मे मौजूद न हो)। [illegible] लिटर पीने के [illegible] मे 5 या उससे अधिक मिलिग्राम फ्लूराइड [illegible] पैदा होती है जिसे 'फ्लूओसिस' कहा जाता है। [illegible]

लगता है कि इसान को सुरक्षा के मामले मे बहुत मामूली सी छूट मिली हुई है।

फ्लूराइड मिले पानी को पीने वाला हर व्यक्ति फ्लूरोसिस का शिकार नही हो जाता। लेकिन वयस्को मे से एक बडी सख्या (10-20 प्रतिशत) इस रोग की कमोवेश शिकार है। इसलिए कुछ क्षेत्रो मे यह समस्या वास्तविक है।

जल मे फ्लूराइड की अधिक या कम मात्रा होने का हमने आपको एक ही उदाहरण दिया है, हालाकि इसका प्रभाव बहुत ही गभीर होता है। किसी रसायन की कमी या अधिकता के परिमाण काफी दूरगामी निकल सकते हैं। *इन सब बातो से स्पष्ट हो जाता है कि जगह-जगह की जल समस्या का हल* अलग-अलग करना होगा। लेकिन इस काय का विस्तार ही चक्रा देने वाला है। लेकिन घबराकर हाथ-पाव छोड देने की भी बात नही है। कोई नई आपत्ति फिलहाल नही आने वाली है। हमारे पूर्वज इस समस्या के साथ जीते रहे हैं। इसलिए विशेषज्ञो द्वारा की गई हर कारवाई से सुधार की निश्चय ही सभावना है।

यहाँ विभिन्न क्षेत्रो मे पीने के जल की पूर्ति के बारे मे अलग अलग विचार नही किया जा सकता। इसलिए हम इस समस्या के कुछ सामान्य पक्षो के बारे मे ही बात करेगे।

देहाती कछारी क्षेत्र

यदि जल चिकनी मिट्टी की कुछ मीटर मोटी परत मे से गुजर जाये तो उसमे निहित सभी विविक्त पदार्थ (रोगाणुओ समेत) छन कर निकल जाते है। इस तरह कछारी क्षेत्रो मे भूमिगत जल पीने के लिए सुरक्षित होना चाहिए, विशेष रूप से अधिक गहरी भूमि मे से निकाला गया जल। यदि *किसी क्षेत्र मे पर्याप्त वर्षा होती है तो जल मे घुले लवण की मात्रा आमतौर* पर स्वीकाय सीमाओ के भीतर होती है। केवल शुष्क और अर्ध शुष्क क्षेत्रो ही मे लवण की यह समस्या खडी होती है। ऐसे स्थानो पर मिलने वाले जल को चखने से ही इसके खारी होने का तुरत पता चल जाता है।

पीने के जल मे विषैले पदार्थो का पुट होने पर विशेष समस्या पदा हो

जाती है। इस समस्या का आमतौर पर तब पता चलता है, जब किसी क्षेत्र मे किसी रोग का अस्वाभाविक प्रकोप देखा जाता है। वैसे होना इसके विपरीत चाहिए। यानि यदि आवश्यक हो तो जल का परीक्षण और ससाधान किया जाये या जलपूर्ति का दूसरा स्रोत खोजा जाये। लेकिन इसकी केवल आशा ही की जा सकती है, क्योकि ऐसी व्यवस्था हमारे मौजूदा साधनो के बूते के बाहर की चीज है। हम इस समस्या के साथ कई पीढियो से रहते आये हैं। यह मानकर चलना उचित होगा कि जो भूमिगत जल हमारे पूवजो को उपलब्ध था, हमे मिलने वाला भूमिगत जल उससे अधिक नही बिगडा होगा। बुरी से बुरी बात यही हो सकती है कि इस विषय मे जो परेशानिया उन्हे उठानी पडती थी वही हमे उठानी पडेगी। हममें और उनमे केवल यही अतर है कि अब हम इस समस्या के प्रति अधिक सचेत है। अब हम कुछ सुधार की आशा कर सक्ते है। यदि हम नहरी जल ऐसे इलाको मे ला सके या स्थानीय भूमिगत जल को ससाधित करने के लिए सस्ती ऊर्जा उपलब्ध हो सके तो निश्चय ही इस समस्या मे कुछ हद तक सुधार सभव है।

जन स्वास्थ्य वालो से दिशा निर्देश लेकर हम भी इस विषय मे बहुत सी बाते स्वय कर सकते हैं। पीने के जल के सुरक्षित पूर्ति साधन को हम अपनी गलतियो से भी अक्सर खराब कर डालते है। कुओ आदि को अच्छी तरह से ढक कर और गदे पानी को जल पूर्ति के स्रोत के पास इकट्ठा न होने देकर हम इस बारे में काफी सहायक सिद्ध हो सकते हैं। कूडा के ढेर और खत्तियो को कुए से परे रखा जा सकता है। हैंडपप आदि को लगाते समय भी इसी तरह के पूर्वोपायो पर अमल करना बेहतर रहेगा।

कुछ इलाको मे हैडपपो का इस्तेमाल लगातार बढ रहा है। कुछ सौभाग्यशाली लोग तो अपने आगन मे ही हैडपप लगवा रहे है। वे अक्सर अपने कम सौभाग्यशाली पडौसियो को अपने हेडपप से पानी भरने देते है।

यदि किसी क्षेत्र मे जलपूर्ति मे विष अधिक मात्रा मे है तो ऐसे जल को विशेपज्ञो के लिए छोड देना चाहिए। वे इस जल को ससाधित कर सकते हैं। लेकिन ससाधित जल काफी महगा पडेगा। इसलिए इसकी खपत कम से कम की जानी चाहिए। नहाने-धोने के लिए ससाधित जल का इस्तेमाल नही करना चाहिए, क्योकि जल मे लवण या विष की अपेक्षाकृत कुछ अधिक मात्रा से नहाने-धोने मे कोई विशेष हानि नही पहुचेगी।

दूसरा विकल्प यही है कि वर्षा के जल को पर्याप्त मात्रा मे एकत्र किया जाये और स्थानीय कुओ के जल को पर्याप्त मात्रा मे इस जल मे मिलाने के बाद इसका प्रयोग पीने या भोजन पकाने मे किया जाये। ऐसे मामलो मे विशेषज्ञो की सलाह जरूरी होती है। इस विषय मे अनुसधान के भी अच्छे परिणाम प्राप्त हो सकते है।

देहात के कठोर चट्टानी क्षेत्र

कछारी क्षेत्रो की तुलना मे देहात के कठोर चट्टानी क्षेत्रो म पीने के पानी की जलपूर्ति की स्थिति कम आरामदेह है। इसके कई कारण है।

जैसा कि हम पहले बता चुके हैं, चट्टानो का एक बहुत ही छोटा अश खुला होता है, जिसमे से वर्षा का जल भीतर घुस सकता है। फलस्वरूप यदि ऐसे क्षेत्रो मे भूमि मे से अधिक मात्रा म जल निकाल लिया जाये तो कुओ का जलस्तर बहुत नीचे चला जाता है। वास्तव मे यह भी हो सकता है कि जलस्तर दरार वाली चट्टान के तल को ही छूने लगे और इसके नीचे वाली चट्टान एकदम ठोस हो और उसमे कही जल ही न हो। साथ ही गर्मी की ऋतु मे कम गहरे कूप वैसे भी सूखने लगते है। यही कारण है कि लोग जल को तालाबो म, कुदरती गढ्ढो मे और नदियो के तलो मे एकत्र करने का प्रयत्न करते है। यह स्रोत भी कम गहरे होने के कारण गर्मी का मौसम बीतने से पहले ही सूख जाते हैं। बहुत सारा जल इनमे से भाप बन कर उड जाता है। जिन क्षत्रो मे भूमिगत जल मौजूद है वहा गहरे कूप और नलकूप जलपूर्ति के विश्वसनीय साधन है, किंतु इन्हे लगाने मे काफी लागत आती है।

देहाती क्षेत्रो मे घरेलू उद्देश्यो के लिए जल की आवश्यकता बहुत कम होती हैं और इसकी पूर्ति चट्टानो मे सीमित मात्रा में एकत्र जल से भी की जा सकती है। किंतु जब सिंचाई के लिए भी उसी स्रोत से जल लिया जाने लगता है तो समस्या उठ खडी होती है—विशेषकर कम वर्षा, कम अतर्जात जल या सीमित मात्रा में जल एकत्र स्रोत होने पर। ऐसे गाँवा की सख्या गिनी चुनी है, जो अपनी घरेलू आवश्यकताओ के लिए जल नहरो या बडे जलाशयो से लेते हैं। वैसे भी हमारे यहा अभी तक जलाशय और नहरे भी पर्याप्त सख्या मे नही है। यह समस्या अपने आप काफी हद तक उस

समय हल हो जायेगी जब हमारी नदियो पर सिंचाई कार्य अधिक सख्या मे पूरे हो जायेंगे।

कठोर चट्टानी क्षेत्रो मे जल की पर्याप्त पूर्ति की ही समस्या नही है, बल्कि अच्छी कोटि का जल न मिलने की भी गभीर समस्या मौजूद है। चूंकि इन क्षेत्रो मे मिट्टी की परत बहुत ही पतली होती है, इसलिए तल का जल उसमे से अच्छी तरह छन कर नही जाता। फिर कूपो की कम गहराई से भी भूमि तल से होने वाले दूषण की अधिक सभावना बराबर बनी रहती है।

जिन क्षेत्रो मे पर्याप्त वर्षा होती है (जैसे कोकण) वहा का भूमिगत जल लवण या विषैले तत्वो से मुक्त होता है। वहा तो वर्षा के जल को पर्याप्त मात्रा मे एकत्र न कर पाना ही गर्मियो मे जल के न मिलने से जुडी समस्याए पैदा करता है।

हम अक्सर खुले तालावो से घरेलू आवश्यकताओ के लिए जल लेते हैं। स्वास्थ्य विज्ञान के सामान्य मानको की कसौटी पर यह खुले तालाब चाहे और कुछ हों, लेकिन इन्ह स्वास्थ्यकर नही कहा जा सकता। इन तालाबो से मिलने वाला पीने का जल हमे कितना नुक्सान पहुचाता है, कोई नही जानता। इन तालावो से कुछ दूरी पर छानने वाले कूपो से हमे सुरक्षित जल मिल सकता है।

अक्सर महसूस किया जाता है कि कठोर चट्टानी क्षेत्रा मे पीने के जल की कमी की समस्या हाल के कुछ वर्षो मे अधिक गम्भीर हुई है। पिछले दस या बीस वर्षो मे यह कमी अधिक महसूस की जाने लगी है। शायद यह कमी या यह अहसास आशिक रूप से समाचारपत्रो म इस विषय मे प्रकाशित जानकारी का परिणाम है और आशिक रूप से यह सच भी हो सकता है।

पिछले दो या तीन दशको म पीने के जल की आवश्यकता दुगनी हो गयी है किंतु गंभीर और निरतर कमी के पीछे मात्र यही एक कारण नही है। शायद वास्तविक कारण यही है कि अब पहले मे कही बहुत अधिक मात्रा मे भूमिगत जल सिंचाई के लिए निकाला जा रहा है। वैसे भी सिंचाई अन्न उपजाने के लिए अत्यन्त आवश्यक है और इसके विना हमारा काम कतई नही चल सकता। बेहतर यही होगा कि अधिक गहरे कूप खोदकर हम भूमिगत जल प्राप्त करे और इस जल का उपयोग केवल पीने के लिए करे। वैसे भी यह जल अपेक्षाकृत अधिक स्वच्छ होगा। किंतु इन गहरे कूपो को

खोदने की प्रारंभिक लागत, गहरे मे भूमिगत जल वाले क्षेत्रो का पता लगाने की अनिश्चितता और इन्हे चलाने तथा इनके रख-रखाव पर आने वाला व्यय हमे इस दिशा मे बढने से रोकता है। यह एक और ऐसा क्षेत्र है जिसमे खोज करने पर बहुत अच्छे परिणाम निकल सकते है। इस समस्या का असली हल बाढ के जल को रोकने और उसे सिंचाई के लिए वितरित करने मे है। इससे बहुमुखी सुधार की सभावना है।

देहाती शुष्क क्षेत्र

इन क्षेत्रो मे ही हमे गभीर समस्या का सामना करना पड रहा है। और कोई आसान हल भी नजर नही आ रहा। शुष्क क्षेत्रो की मिट्टी मे आमतौर पर लवण बहुत अधिक मात्रा मे मिला होता है। इस मिट्टी मे से छनकर भूमि के भीतर जाने वाला जल भी खारी हो जाता है।

कोई भी कभी भी कडवा खारी जल नही पीना चाहता इसलिए लोग इसका उचित विकल्प खोजने मे हमेशा से प्रयत्नशील रहे हैं। थार के रेगिस्तान मे कुछ लोग काफी बडे क्षेत्र से वर्षा का जल एकत्र करते है और अपने घरो मे बनी बडी-बडी बावडियो मे उसे सुरक्षित रखते हे। इससे उनके पीने के जल की माग पूरी हो जाती है। जल की दूसरी आवश्यकताए उन तालाबो से पूरी की जाती है, जिनमे काफी बडे क्षेत्र की भूमि की सतह पर बहकर आने वाले जल को इकट्ठा कर लिया जाता है।

कुछ इलाको मे वर्षा होती ही नही। इसलिए तालाबो मे पानी के इकट्ठा होने का प्रश्न ही नही उठता। मजबूरन लोगो को 30-100 मीटर गहरे भूमिगत जल को खीचना पडता है। एक बार पानी बाहर खीचने के लिए ऊट को दो चक्कर मारने पडते है। इतनी कडी मेहनत से निकाले गये जल के खारी होते हुए भी लोगो को अपनी जरूरी मागो की पूर्ति मे सहायता मिलती है। पिछले पद्रह वर्ष के दौरान सरकारी सस्थानो ने थार के रेगिस्तान मे कुछ क्षेत्रो (लाठी) मे पीने योग्य जल का पता लगाया है। गहरे नल-कूप खोदकर जल निकाला गया है और वहा के निवासियो मे वितरित किया गया है। पहले यहा के बाशिंदे पानी की कमी के कारण दूसरे इलाको मे चले जाते थे, लेकिन अब उनका दूसरे क्षेत्रो मे प्रवास काफी कम हो गया है।

वैसे भी थार का रेगिस्तान तो इस समस्या की चरम स्थिति का द्योतक

है। किंतु ऐसे भी बडे-बडे विशाल क्षेत्र है, जो अर्ध शुष्क कोटि मे आते है। इन क्षेत्रो मे रहने वालो को भी गर्मी के मौसम मे पीने के पानी की गभीर कमी का सामना करना पडता है, विशेषकर उस वर्ष जब वर्षा बहुत ही कम हुई हो। सिंचाई के लिए जल के अधिक उपयोग के कारण हाल के कुछ वर्षो मे जल की यह कमी गर्मी के हर मौसम मे उत्पन्न होने लगी है। फिर जल के खारी होने की समस्या भी बदस्तूर है। यहा भी गहरे कूपो से पीने के जल की समस्या हल की जा सकती है, बशर्ते उसका उपयोग सिंचाई के लिए बहुत अधिक न किया जाये। लेकिन पीने का जल अच्छी कोटि का ही होना चाहिए। पीने का अच्छी कोटि का जल उपलब्ध न होने की स्थिति मे कुछ नही किया जा सकता। बस इसान के शरीर की रोग-विरोधी और लचीली क्षमता पर निर्भर रहने के अलावा कोई चारा नही। जब कभी हम बाढ के जल को इन क्षेत्रो की तरफ मोडने और उसे एकत्र करने मे सफल होगे, तभी इन इलाको के अच्छे दिन आएँगे। पीने का अच्छा जल ही जीने के लिए पर्याप्त नही, अन्न भी अनिवार्य है।

नगरो मे जलपूर्ति

नगरो मे जलपूर्ति की समस्या सभी क्षेत्रो मे अनिवार्य रूप से समान है, चाहे वे नगर कछारी क्षेत्रो मे हो या कठोर चट्टानी इलाको मे। बडे शहरो मे सीमित क्षेत्र मे लाखो लोग बसे हुए हैं। उनकी तादाद इतनी अधिक हैं कि वहा उपलब्ध भूमिगत जल से उनकी घरेलू और औद्योगिक माग पूरी नही की जा सकती। इन नगरो के निगम भूमिगत जल या तल-जल पास के क्षेत्रो से आयात करते है। कभी-कभी तो यह जल बहुत दूर-दराज के इलाको मे लाया जाता है। भूमिगत जल को आमतौर पर मामूली ससाधित या कतई अससाधित रूप मे नलो मे सीधे डाल दिया जाता है। तल से प्राप्त जल मे क्लोरीन[1] मिलाई जाती है (समद्ध नगर निगम इसे पर्याप्त मात्रा मे और निधन निगम मनोवैज्ञानिक तसल्ली देने के लिए जल मे क्लोरीन

[1]जल में क्लोरीन मिलाने से भी आज समस्याए खडी हो जाती है। यदि जल में पहले से जैविक दूषक हुए तो कुछ पर क्लोरीन की प्रतिक्रिया से क्लोरोफाम और दूसरे क्लोरो जविक यौगिक पदार्थ उत्पन्न हो सकते है, जिनके बारे में कैंसर कारक होने का सदेह है।

मिलाते है)। इससे रोगाणु मर जाते हैं और तब कही जल को नलो मे डाला जाता है।

नगर निगमो को कुछ विलोमी समस्याओ को भी देखना पडता है। जल-मल का निपटान भी उनके जिम्मे आता है ताकि स्वास्थ्य सबधी समस्याए न उठ खडी हो। छोटे नगरो के निगम जल-मल को सीधे किसानो को बेच देते है जो शहर के बाहर खेतो मे सब्जियाँ उगाते है। बडे नगरो के निगम जल मल को आमतौर पर बडी नदियो, नालो या समुद्रो मे पहुचा देते हैं और ऐसा करने से पहले वे इस जल मल मे से रोगाणु नष्ट करने का प्रयत्न या प्रयत्न का दिखावा करते हैं। अब नगरो के जल-मल के उपयोग की योजनाओ पर काम किया जा रहा है ताकि इससे कूडा-उवरक उत्पन्न किया जा सके।

आज हमारे नगरो मे जलपूर्ति, कूपो से होने वाली उस पारपरिक जल-पूर्ति से एकदम भिन्न है जिसका उपयोग हमारे पूर्वज करते थे। शहरी जन-सख्या की सघनता के कारण ही कूपो से होने वाली जलपूर्ति की पारपरिक पद्धति को छोडना पडा है।

बडे शहरो मे जल विशेषज्ञो की सेवाए निरतर उपलब्ध रहती है। वे स्वीकार्य मानको को बनाये रखने का प्रयत्न करते है। किंतु कभी कभी असफलताए भी आ सकती है और आती भी है। नलो से जो पानी आता है शहरी लोग वही पीते हैं। नलो से घरो मे जल मिलने की सुविधा के साथ कुछ खतरा जुडा रहता है।

ससाधित जल निश्चय ही बेहतर माना जाता है। किंतु यह हमारी शारीरिक प्रणाली के लिए नया है। नलो के इस जल से शारीरिक प्रणाली पर धीरे-धीरे होने वाले प्रभावो का पता पीढियो के बाद ही चल पायेगा।

कभी-कभी नगर की जलपूर्ति मे भारी कमी पैदा हो जाती है। वैसे भी नगर मे लोग भारी तादाद मे बसते है। उनमे प्रभावशाली, साधन सपन्न और अधिकारिक व्यक्तियो की सख्या भी काफी होती है। वे किसी न किसी प्रकार से समस्या पर काबू पा लेते है। वे किसी और क्षेत्र से अपने नगर की जलपूर्ति के लिए जल की व्यवस्था कर लेते है। अनेक नगरवासी शेव बनाते समय नल को खुला रखते है, लेकिन इसके बावजूद मात्रा की दृष्टि से जल की कुल आवश्यकता इतनी अधिक नही होती।

शहरी जलपूर्ति पर प्रति व्यक्ति नियोजन देहात में घरेलू जलपूर्ति पर प्रति व्यक्ति नियोजन से लगभग दस गुना होता है। ऐसा होना स्वाभाविक भी है, क्योंकि नगरवासी को जल नल में से ही मिलना चाहिए। वह एक या दो किलोमीटर चल कर कूप जैसे जलपूर्ति के स्वतत्र साधन को तो खोजने से रहा। फिर छोटे से सीमित क्षेत्र मे कूप आदि का प्रयोग करने वालो की सख्या भी तो बहुत अधिक होगी।

सार

हमारा देश काफी वडा है और इसकी जलवायु भी सबसे अलग है। कुछ क्षेत्रो मे प्रतिवर्ष पीने के जल की कमी हो जाती है, खासतौर पर गर्मियो के मौसम मे। चूंकि पीने के जल की आवश्यकता मात्रा के लिहाज से कम होती है, इसलिए इस कठिनाई को लोग किसी न किसी तरह से पार कर लेते है। पीने के अच्छे जल (कुछ क्षेत्रो मे) की कमी से स्वास्थ्य पर क्या प्रतिकूल प्रभाव पडता है, इसके बारे मे कुछ नही पता। लेकिन पीने के जल से सबधित सभी समस्याओ के बारे मे पता लगा लिया गया है और स्वास्थ्य मत्रालय ने समस्याओ के स्तर का अनुमान लगा लिया है। नहरो के बढने से भूमिगत जल की उपलब्धता बढेगी और फलस्वरूप इन सभी समस्याओ की तीव्रता कम होती जायेगी। तभी देहाती क्षेत्रो मे नलो से जलपूर्ति का हमारा सपना साकार होगा।

पिछले तीन दशको मे शहरी जनसख्या मे बडी तेजी से वृद्धि हुई है। फलस्वरूप घरेलू जलपूर्ति की माग मे भी बडी तेजी से बढोतरी हुई है। कुछ नगरो मे पास के क्षेत्रो मे स्थित साधनो से पहले से ही जल ले लिया गया है और उससे बढती हुई माग पूरी की जा रही है। नगरो मे काफी दूरस्थ क्षेत्रो से भी शहरो तक बडी मात्रा मे जल लाने की जरूरत है। इसे एक तरह की छोटी चुनौती ही समझिए।

हम अभी तक बरकरार है और हमारी सख्या तथा आयु मे निरतर वृद्धि हो रही है। यह तथ्य स्पष्ट करता है कि अतर्राष्ट्रीय मानको के हर पक्ष का ध्यान रखना वाछनीय है, लेकिन अनिवार्य नही। शायद मानको को बनाये रखने मे हमारी च्युति से हमारे स्वास्थ्य और आयु पर प्रतिकूल प्रभाव पडता हो। किंतु हमे यह नही पता कि यह प्रतिकूल प्रभाव किस

सीमा तक पड़ता है। हमे यह भी नही पता कि आगे बताये तीन कारणो मे से कौन सा कारण दीर्घायु की सीमा निर्धारित करने मे प्रमुख रहेगा पीने के अतर्राष्ट्रीय स्तर के जल की अनुपलब्धता, अन्य स्वास्थ्य सेवाओ की अनुपलब्धता या कुपोषण।

7

त्रिशूल और लोनार

पर्यावरण विज्ञान के नियमो के अनुसार अधिक ऊचाईयो पर वायु भूमितल की वायु की तुलना मे अपेक्षाकृत ठडी होनी चाहिए। और वास्तव से ऐसा होता भी है। यदि हम खुले हेलीकोप्टर मे ऊपर जाये तो हमे पता लगेगा कि ऊपर उठने के साथ-साथ वायु अधिक से अधिकतर ठडी होती जाती है। 5 किलोमीटर की ऊचाई पर वायु एकदम बर्फीली हो जाती है। उससे ऊपर और ठडी होती हुई वायु का तापमान हिमाक विंदु से भी नीचे गिर जाता है। इसी कारण पहाड मदानो से ठडे होते है। ऊचाई के अलावा वायु का तापमान ऋतुओ पर भी निर्भर करता है। सर्दी की हवा अपेक्षाकृत अधिक ठडी होती है। और दूसरे कारक भी है, लेकिन वे कम महत्वपूण है। उनके बारे मे हमे चिंता करने की आवश्यकता नही।

हिमनद (ग्लैशियर)

यदि हम गर्मियो मे हिमालय पर्वत शृखला के किसी पहाडी स्थान (2-3 कि० मी० ऊचाई) पर जायें तो हमे वहा सुखद ठडा मौसम मिलेगा। वहा ठहरने के दौरान हम देखेगे कि बीच बीच म भारी वर्षा भी होती है। वर्षा का यही जल भारी मात्रा मे हिमालय से निकलने वाली नदियो मे वहकर आता है। हिमालय पर्वत पर जमी वफ से पिघल कर पानी की जो मात्रा नदियो मे आती है, वह वर्षा के जल की मात्रा से कही कम होती है। हिमालय से निकलने वाली नदियो को मुख्य रूप से जल पहाडो मे होने वाली

वर्षा से मिलता है, न कि चोटियो पर जमी बफ से । कहने का अथ यह हुआ कि वर्षा ऋतु मे भारी मात्रा मे जल पहाडो से लुढक कर नीचे आता है ।

यदि हम इन्ही पहाडी स्थानो पर सर्दियो मे भी रहे तो हमे वर्षा के बजाय बफबारी देखने को मिलेगी । लेकिन बफबारी बहुत अधिक नही होती । गर्मियो की वर्षा की अपेक्षा यह बफबारी कम मात्रा मे होती है । यह बफ गर्मियो के शुरू मे अधिकतम क्षेत्रो मे पिघल जाती है और नदियो के बहते जल मे मिल जाती है ।

अब हम थोडा उत्तर की ओर अधिक ऊचाई पर चलते है, लगभग 6 किलोमीटर ऊचाई पर । यहा मौसम अधिक ठडा होगा । सर्दियो मे इस स्थान का तापमान शून्य से भी नीचे रहता है । गर्मिया तक मे यहा का तापमान पूरे दिन भर शून्य रहता है । केवल दोपहर बाद का समय ऐसा होता है, जब वातावरण थोडा गर्माता है और थोडी बहुत बफ पिघलती है । इस ऊचाई पर वर्षा की उम्मीद भी कम ही होती है । जो थोडा बहुत जल आकाश से गिरता है, वह अधिकतर बफ के रूप मे गिरता है । गर्मियो तक मे यही स्थिति रहती है । कुल बफबारी (सर्दियो-गर्मियो मे) कम ऊची पहाडियो पर होने वाली वर्षा की तुलना मे नगण्य ठहरती है । वायु का तापमान भी बहुत ही कम स्थितियो मे शून्य से ऊपर जाता है । बफ के रूप मे जमे जल की इस नगण्य सी मात्रा को पिघलाने मे गर्मियो का पूरा मौसम लग जाता है ।

इतनी ऊचाई पर एक और अजीब बात देखने को मिलती है । भूमि पर पडे बफ के बडे बडे लौदे देखने को मिलते है । पहाडियो के बीच, घाटियो मे, गहरी खदको और गढ्ढो मे तथा ढलानो पर यह लौदे पडे होते है । हम इन्हे ग्लेशियर या हिमनद कहते है । प्राचीन काल मे जब हिमालय क्षेत्र (सामान्य रूप से पूरा विश्व) अपेक्षाकृत अधिक ठडा था, तभी से बफ के यह बडे लौदे वहा इकट्ठा होते रहे है । उस काल मे हिमालय क्षेत्र इतना ठडा था कि वहा वर्ष भर मे जितनी बफ गिरती थी, उतनी वर्ष भर मे पिघलती नही थी । फलस्वरूप वहा धीरे-धीरे बफ के लौदे एक-दूसरे के ऊपर जमते चले गये और सपीडित होकर ठोस बन गये । वास्तव मे उस समय हिमनद अपेक्षाकृत अधिक विशाल होते थे । वे अधिक बडे क्षेत्र पर फले होते थे और अधिक मोटी परत के होते थे । यह 2-3 कि० मी० नीचे तक चले

गये होते थे। अब भी 2 कि० मी० ऊंचाई पर इनके स्पष्ट चिह्न देखे जा सकते हैं।

आज जलवायु अपेक्षाकृत अधिक उष्ण है। पिछले कई हजार वर्षों से यह उष्णता चली आ रही है। यह उष्णता उतनी बर्फ को पिघलाने के लिए पर्याप्त है, जितनी वर्ष भर मे गिरती है। वास्तव मे पिघलने की मात्रा कुछ अधिक ही है। यही कारण है कि प्राचीन हिमनद धीरे-धीरे पिघल रहे है और आकार मे छोटे होते जा रहे है। इनका निरतर छोटा होते जाना स्पष्ट देखा जा सकता है।

हम अब पूछ सकते है कि यदि जलवायु आज जितनी गर्म रहे तो क्या निकट भविष्य मे हिमालय मे स्थित सभी नद पूरी तरह पिघल जायेंगे? इसका उत्तर नकारात्मक है। ऊची चोटियो पर स्थित हिमनद तो किसी भी सूरत मे कभी भी पिघल कर समाप्त होने वाले नहीं है। हिमालय की उच्चतम चोटिया अभी भी इतनी ठडी ह कि गर्मियो तक मे वहा जरा सी भी बर्फ नही पिघलती। किंतु हिमनद खिसककर कम ऊचाईयो पर आ जाते है, जहा वे पिघलने लगते ह। इस बीच इन ऊची चोटियो पर उतनी ही मात्रा मे बर्फ गिरकर जमती जाती है। फलस्वरूप बर्फबारी से गिरकर जमने वाली बर्फ और चोटियो से खिसककर नीचे आने और पिघलने वाली बर्फ के परिमाण मे सतुलन बना रहता है। ऐसा प्रतीत होता है कि हिमालय की उच्च शृखलाए अपनी शात धवलता हमेशा बरकरार रखेंगी।

उपलब्धतता

उपरोक्त तथ्यो की हमारे मुख्य प्रश्न से क्या सगति बठती है? अर्थात् जल की उपलब्धतता के हमारे मुख्य प्रश्न से यह सभी बाते कैसे जुडी हुई हैं? पहली बात तो यह है कि हिमालय क्षेत्र पर वाष्प कणो का वर्षा के तरल रूप मे न गिरकर बर्फ के रूप मे गिरना बहुत ही लाभप्रद है। वर्षा के जल की तरह बर्फ गिरकर तुरत नही बहने लगती। सर्दी की बर्फ बहुत धीरे-धीरे पिघलती है। इस तरह बर्फबारी के बहुत समय बाद बर्फ का पानी के रूप मे पिघलना शुरू होता है और यह पिघला जल आमतौर पर धीमी रफ्तार से बहता है। यही कारण है कि हिमालय से निकलने वाली नदियो मे गर्मियो के दौरान भी जल का काफी बहाव रहता है। यद्यपि यह जल-विमर्जन वर्षा

ऋतु मे वर्षा के जल के विसजन से कम होता है, लेकिन यह जल बहुत ही महत्वपूण और उपयोगी होता है क्योंकि यह उस समय मैदानो मे पहुचता है, जब इसकी आवश्यकता सबसे अधिक होती है और आशिक रूप से निर्मित नहर-प्रणाली मे इसका पूरा उपयोग किया जा सकता है।

स्थायी हिमनदो का योग, जल के परिमाण की दृष्टि से, चाहे कितना ही कम क्यो न हो, किंतु यह है बहुत ही महत्वपूण। इसकी वजह यह है कि बहुत ही सही समय पर इन हिमनदो की बफ पिघलती है। यह पिघलकर आया जल ऐसे समय हमे मिलता है, जब गर्मियो का शिखर होता है और निचली ऊचाईयो पर सर्दी से गिरी अधिकाश बफ पिघल चुकी होती है।

वर्षा आरम्भ होने के बाद भी, यानि जुलाई-सितबर के महीनो मे भी, हिमनदो का पिघलना कुछ हद तक जारी रहता है। यह पिघलकर आने वाला जल निचली ऊचाईयो से आ रहे बाढ जल मे मिल जाता है। यदि इस जल को बाध कर न रोका गया हो तो यह समुद्र मे जा गिरता है।

अनुमान

स्थायी हिमनदो की सख्या और आयतन के बारे मे जानकारी एकत्र करना उपयोगी है। इस जानकारी के आधार पर सही परिप्रेक्ष्य मे कुछ अनुमानो की जाच कर सकते हैं।

सर्दियो के दौरान हिमालय पवत शृखलाओ का बफ से ढका क्षेत्र लगभग 500,000 वग कि० मी० (2,500 कि० मी० लबाई × 200 कि० मी० चौडाई) है। स्थायी रूप से हिमनदो से ढका क्षेत्र इससे कुछ कम बैठता है यानि 50,000 वग कि० मी० (2,500 कि० मी ×20 कि० मी०)। इन हिमनदो मे बफ की सूरत मे कितना जल बद है, इस के बारे मे हमारे पास सही जानकारी नही है। किंतु इसके बारे मे एक मोटा सा अनुमान अवश्य लगाया जा सकता है। यह लगभग 400 एम एच एम होना चाहिए, यानी पूरे देश भर मे वप भर के दौरान हुई वर्षा के जल के बराबर। यदि इन हिमनदो से अप्राकृतिक तरीके से जल लिया जाये तो यह अधिक देर नही चलने वाले है। किंतु यदि इनसे जल लेने की कोई व्यावहारिक प्रणाली मालूम कर ली जाये तो इस आरक्षित जल का उपयोग आपाती स्थितियो मे किया जा सकता है। लेकिन सबसे महत्त्वपूर्ण एक ऐसी प्रणाली खोजना है, जिससे वर्षा के मौसम मे

बाढके जल को रोका जा सके। एक सभव प्रणाली यह हो सकती है कि हिमालय की निचली और मझली ऊचाईया पर गिरने वाली वर्षा को बफबारी मे परिवर्तित कर दिया जाये। तब नदियो मे जल का वहाव समय पर एकसा रखा जा सकता है। किंतु सौभाग्य से कहे या दुर्भाग्य से, वर्षा को वफबारी मे बदलने की प्रणाली किसी को ज्ञात नही। इसलिए बाढ-जल को रोककर बाधने के पारपरिक तरीके से काम लेने के अलावा हमारे पास कोई और चारा नही है। *अर्थात् बडे-बडे और विशाल स्तर के बाध बनाये जाये।* यह उद्देश्य इनसे पूरा होता देखा गया है।

झीलें

हमारे देश मे वडी सख्या मे विशाल प्राकृतिक झीले नही हैं। कुछ बीच के दर्जे की झीले काश्मीर (डल, वूलर, सोमरीरी, पेगकोग आदि), कुछ छोटी झीले कुमाऊ की पहाडियो (नैनीताल, भीमताल) और कुछ सिक्किम मे (यामट्रोकत्सो, चामतौडोग) है। कुछ छोटी झीलें प्रायद्वीप क्षेत्र में भी है। राजस्थान मे भी कुछ कम गहरी झीले मिलती है। इनमे साभर झील सबसे वडी है। इसका क्षेत्रफल 250 वग कि० मी० है और यह वर्षा ऋतु मे एक मीटर गहराई तक भर जाती है, लेकिन कुछ समय बाद ही सूख जाती है और पीछे नमक की परत रह जाती है।

यह झील जहा भी है, वहा के लिए महत्त्वपूण है और पयटको के लिए आकपण का केंद्र है। दक्षिण की असिताश्म चट्टानो मे 100 मीटर गहरी और 2 कि० मी० व्यास की गत जैसी एक झील का नाम लोनार झील है, जिसकी वनावट कटोरे की तरह है। इस झील की ओर हाल ही मे ध्यान गया है। समझा जाता है कि यह गर्त उल्का के आघात से वना है। यदि यह सच है तो असिताश्म चट्टानो मे उल्का आघात से निर्मित यह प्रथम गर्त है।

जल के प्रवाह को नियत्रित और जल को एकत्र करने की दृष्टि से शायद कृत्रिम झीले अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूण है और इनकी सख्या भी अधिक है। यह वडे और छोटे बाध बनाकर नदी के जल को रोक कर बनाई गई है।

8

कांटा

घर में पानी का नल होना अच्छी बात है। जब इसे खोला जाये तो इ
से जल आना चाहिए ताकि घरेलू आवश्यकताओं की पूर्ति सरलता से
जा सके। इसी तरह खेत मे नहर का पानी भी अच्छी बात है। जब न
का बबा खोला जाये तो इसमे से पानी तेज रफ्तार से निकलना चाहि
ताकि जब भी आवश्यकता हो, खेतो की सिंचाई की जा सके। यदि यह सभ
नही है तो घर मे कूप या हैंडपप लगा होना चाहिए और खेतो मे रहट
नलकूप। इन्हे प्राप्त करने मे कही कोई बुनियादी कठिनाई नजर नही आत
विशेष रूप से सिंधु-गगा के मैदानो जैसे कछारी क्षेत्रो मे जहा पर्याप्त व
होती है। इन क्षेत्रो मे हम जहा भी भूमि मे छेद करेंगे, भूमिगत जल पर्या
मात्रा मे पाने की उम्मीद कर सकते हैं। विभिन्न स्थानो के जल के गुण औ
मात्रा की प्रचुरता मे कमोवेश अतर हो सकता है, लेकिन भूमि मे किय
गया कोई छिद्र जल से छूछा नही निकलता। इस तरह इन क्षेत्रो मे ज
सगुनियो की कोई आवश्यकता नही और वैसे भी वे इन क्षेत्रो मे नही पा
जाते।

लेकिन अर्ध शुष्क क्षेत्रो मे कभी-कभार स्थिति कुछ भिन्न हो सकती है
हम भूमि मे ऐसे छिद्र आसानी से कर सकते हैं जिनसे पर्याप्त मात्रा मे ज
उपलब्ध हो। किंतु यह पानी खारा हो सकता है। यह लवणता विशाल क्षे
पर फैली हो सकती है या छोटे-छोटे क्षेत्रो मे सीमित हो सकती है। अब यदि
कोई व्यक्ति वह स्थान बता सके जहा कुआ खोदने से खारे पानी के बजाय

मीठा पानी मिले तो उस व्यक्ति की तारीफ करने मे हम पीछे नही रहेगे।

यह कोई कठिन काम नही है। वैज्ञानिक इस तरह के प्रश्न का सामान्यतया सतोषजनक उत्तर दे सकते है। वे एक ऐसे उपकरण का प्रयोग करते है, जो खेत की मिट्टी और उसके नीचे छिपे तत्त्वो की विद्युत प्रतिरोधी शक्ति मापता है। दूसरे शब्दो मे, गहरा छिद्र किये विना ही वे गहराई मे स्थित परतो की विद्युत प्रतिरोधी शक्ति माप सकते हैं। किसी भी परत की विद्युत प्रतिरोधी शक्ति इस बात पर निर्भर करती है कि वह परत किस पदाथ और किस रसायन मे मिल कर बनी है और उसमे जल है या नहो। फिर जल की विद्युत प्रतिरोधी क्षमता, उसमे घुले लवणो की मात्रा पर निभर करती है। उसमे लवण की मात्रा जितनी अधिक होगी, विद्युत प्रतिरोधी शक्ति उतनी ही कम होगी। इस प्रकार विद्युत प्रतिरोधन की मापो से पता चल जाता है कि भूमि के उस टुकडे मे जल है या नही और यदि है तो वह जल मीठा है या खारी। लेकिन सही अनुमान लगाने का काम हमेशा इतना सरल नही होता। इस काम मे अनुभव और प्राप्त मापो की सही सही व्याख्या बेहद जरूरी है।

सही अनुमान लगाने की क्षमता के खरेपन की कसौटी तो चट्टानी क्षेत्र है और वही इसकी वास्तविक उपयोगिता भी सिद्ध होती है। हमारे देश की आधे से अधिक भूमि चट्टानो से ढकी हुई है, जिन पर मिट्टी की बहुत ही हल्की परत होती है। प्रायद्वीप असिताश्म और कणाश्म चट्टानो से ढका हुआ है। यहा यदि बोर किये गये छेद या खोदे गये गड्ढे के नीचे कही टूटी या जजर चट्टान मिलती है तो निश्चय ही वहा से अच्छी मात्रा मे जल मिलने की सभावना होती है। लेकिन यदि नीचे ठोस चट्टान मिलती है तो वहा बहुत ही कम जल मिल पायेगा। ऐसे सूखे छिद्रो को ड्रिल करने मे हम बचना चाहेगे। क्या इस विषय मे विज्ञान कोई उपाय सुझा सकता है ?

जी हा, वही विद्युत-प्रतिरोधी शक्ति मापन वाला उपाय प्रस्तुत है। किंतु इन चट्टानी क्षेत्रो मे यह उपकरण सीमित रूप से ही सफल हो पाता है। कभी-कभी इस तरीके के साथ दूसरी प्रणालियो की भी मदद ली जाती है ताकि भूमिगत जल का कुछ और सही अनुमान लगाया जा सके। विद्युत प्रणाली की सीमा यही है कि जल की उपस्थिति से विद्युत प्रतिरोधन मे परिवर्तन असर बहुत ही मामूली सा होता है, जबकि दूसरी तरफ एक स्थान से दूसरे स्थान पर चट्टान की सरचना मे परिवतन के कारण विद्युत प्रति-

रोधन मे अपेक्षाकृत अधिक परिवर्तन होता है।

प्रशिक्षित और अनुभवी भूविज्ञानी द्वारा विद्युत-प्रतिरोधन मापो और उनकी सभावित व्याख्याओ के आधार पर अनुमान के अलावा फिलहाल विज्ञान के पास और कोई उपाय नही है। फिर यह उपाय इतना सस्ता भी नही है। सस्ता तो जल-सगुनिया ही है जो एक टहनी, अपना अनुभव और अपनी प्रभा के अलावा और किसी वस्तु का इस्तेमाल नही करता। अब चाहे यह टहनी वाला मामला कतई पाखड हो, किंतु वह अपनी इसी जमा पूजी के साथ विज्ञान के मुकाबले मे खडा है। वह सस्ती, तुरत और नाटकीय सेवा देता है, इसलिए फलफूल रहा है। वह कुछ सैकडा रुपये ही वसूल करता है, जबकि बोरिंग मे पाच हजार से अधिक रुपये लग जाते है। सगुनिये का खच एक या दो मीटर की अतिरिक्त ड्रिलिंग के बराबर बैठता है। ग्राहक अपनी समझ से काम लेता हुआ इस उम्मीद मे कुछ सैकडा रुपये भी दे डालता है कि शायद सगुनिये का सगुन ही काम कर जाये। वैज्ञानिक के सामने एक कठिन चुनौती खडी है। उसे अपना अनुमान दुरुस्त करना होगा और इस तरह लागत मे बचत हो सकेगी। वह यह "पाखड" खत्म कर सकता है, बशर्ते वह अब तक जो कर सका है, उससे स्पष्ट रूप से कुछ बेहतर कर दिखाये। कमोबेश बेहतर नतीजे दिखाने से काम नही चलने वाला है। इस क्षेत्र मे अनुसधान का जबरदस्त आर्थिक प्रभाव पड सकता है। हर बार जमीन म बोर करने पर जल निकले, सोचिए इससे कितनी बचत हो सकेगी।

9

महाविपत्ति ?

हमारे पूवजो के समय में यह नही थी। इतने वडे स्तर पर तो कतई नही थी। यह एक नई वात है। इसे "दूपण" कहा जाता है। कुछ लोग इसे "धीमी गति का आत्मघात" कहते है, कुछ इसे "अनिवार्य बुराई" के रूप में स्वीकारते है। व्यक्तिगत रूप से इसका शिकार होने तक अधिकाश लोग इसके विपय में कुछ भी नही सोचते या कहते। शिकार होने पर वावेला मच जाता है। वावेला मचे भी क्यो नही ? क्योकि यह लोगो को यमलोक पहुचा सकता है।

आइये, इस समस्या पर तटस्थ दृष्टि से विचार करे।

"दूपण" क्या है ? हमारे वातावरण मे (हम अपने को जल तक ही सीमित रखेंगे) कुछ ऐसे उपादानो की उपस्थिति को दूपण कहा जाता है, जिनमे से कुछेक तो एकदम नये है और जिनके भारी मात्रा मे सकेंद्रण से हम पर तुरत या लवे अर्से वाद प्रतिकूल प्रभाव पडता है। यह उपादान हम ही अपने उन अनेक कायकलापो के जरिए अनजाने में परिवेश मे छोडते रहते हैं, जो हमने हाल के कुछ वर्षो मे वडे स्तर पर करने प्रारभ किये हैं। इन उपादानो को "दूपक" कहा जाता है।। शहरी अपशेप जसे दूपक हमारे पूवर्जों के समय मे भी थे। सख्या मे दिन दूने रात चौगुने वढने के कारण, विशेपकर नगरा में, हमने दूपण के भार मे और अधिक वृद्धि की है। वैसे यह समस्या ऐसी नही है कि इस पर काबू न किया जा सके। जैसा कि हम पहले वता चुके हैं, शहरी अपशेप उवर्रक और ईंधन जैसे उपयोगी उत्पादो मे बदला जा सकता

है। हमारे अपने देश मे यह सभावित प्रयत्न व्यवहारिक रूप ले रहा है। इस दिशा मे प्रयत्न जारी ह।

दूषण की समस्या मुख्य रूप से नदियो मे औद्योगिक अपशेष डालने और कुछ नये किस्म के औद्योगिक उत्पादो के प्रयोग से खडी हुई है। यह समस्या अभी तो काबू मे है। लेकिन यह समस्या निश्चय ही हमारे देश मे मौजूद है। सभी प्रकार के दूषण (और शानदार प्रगति) का मूल कारण कोयले और तेल (तथा प्राकृतिक गैस) की प्रत्यक्ष या परोक्ष खपत ही प्रतीत होती हे। कोयले और तेल से ही वडे स्तर पर खनन, विस्तृत औद्योगीकरण और विशाल निर्माण काय सभव हुए हैं। इन्ही से निरतर वढती सख्या को आहार मिला है। वेशक यह कमाल अधिक देर नही चलने वाला है और न ही कल खत्म होने वाला है। तेल दो या तीन पीढी और कोयला इससे कुछ अधिक पीढी तक चलने का अनुमान है। प्रगति और दूषण के दैत्याकार इजिन की रफ्तार कम करने के लिए फिलहाल हम कुछ भी नही कर सकते। इसलिए हम कुछ अलग-अलग व्याधियो पर विचार करगे और उनके इलाज के बारे मे सोचेगे।

औद्योगिक अपशेष

धरती के गभ मे भारी परिमाण मे खनिज पदाथ दबे पडे है। वे लाखो वरसो से इसी तरह जमीदोज है। अब हम उन्हे खाद-खोद कर निकाल रहे है। उनमे से कुछ को छाँट कर हम अलग करते है और शेष का अलग से ढेर लगा देते है या फेक देते हैं। इससे परिवेश मे छोटा-मोटा असतुलन उत्पन्न हो जाता है।

इन छटे हुए खनिजा का ससाधन उद्योग करते है। इस ससाधन मे आमतौर पर रासायनिक प्रक्रियाए भी शामिल होती है। इससे वडी मात्रा मे अपशेष निकलता है, जिसे कही न कही फेकना पडता है। यदि इन्हे भारी मात्रा मे जल मे या मिट्टी मे फेका जाये तो वे बहुत ही हानिकर सिद्ध हो सकते है। इनसे पानी केवल पीने योग्य नही रह जाता, बल्कि उससे सिचाई भी नही की जा सकती। वे मिट्टी के उपजाऊपन को भी समाप्त कर देते हैं।

हमारे देश मे यह समस्या कितनी गभीर है? अधिक गभीर नही। दूसरे देशो की तुलना मे हमारे यहा औदयोगीकरण उतना विस्तृत या गहन नही

है। इसीलिए यह समस्या भी अनुपात मे कम गभीर है। लेकिन समस्या सामने अवश्य है, सीमित क्षेत्रों मे। समक्ष आने पर इसे स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

हाल ही मे एक उवरक कारखाने को बद करने का आदेश दिया गया था, क्योकि वह भारी मात्रा मे हानिकर अमोनिया और सखिया पास की नदी मे विसर्जित कर रहा था। कास्टिक सोडा या रग बनाने वाले कारखानो जैसे उद्योगो की तुलना मे हमारे देश मे उवरक कारखानो की स्थिति दूसरे किस्म की है। वेशक हमे कास्टिक सोडा और रगा की आवश्यकता है, लेकिन रासायनिक उवरक की हमे उनसे अधिक जरूरत है—क्योकि उससे हमे अधिक अन्न उगाने मे सहायता मिलती है, जिसकी हमारे देश को बेहद जरूरत है। रासायनिक उवरक कारखाने को बद करने के आदेश का औचित्य निश्चय ही अधिकारियो के सामने रहा होगा। अब चाहे यह कारखाना अस्थाई तौर पर बद किया गया हो, किंतु इससे एक बडा ही परेशानकारी तथ्य सामने आता है। अर्थात् उद्योग शुद्ध वरदान नही है। इनसे उत्पन्न दूषण कभी-कभी अच्छाई के बजाय बुराई सिर ला सकता है, कम से कम स्थानीय रूप मे तो निश्चय ही।

दूषण के और भी कई स्पष्ट उदाहरण दिये जा सकते है। अक्सर उल्हास नदी (बम्बई के निकट) और दामोदर नदी (कलकत्ता के निकट दुर्गापुर-आसनसोल) के दूषण की बात की जाती है। बडौदा के उद्योगो ने 65 कि० मी० लबा पक्का नाला बनाने का उचित विचार किया है, जो औद्योगिक अवशेष को बडौदा से समुद्र मे ले जायेगा। यही आशा की जाती है कि यह अवशेष पर्याप्त रूप से समुद्र के जल मे विसर्जित हो जायेंगे और वहा कोई समस्या उत्पन्न नही करेंगे।

अदृश्य दुश्मन

कुछ औद्योगिक अवशेप ऐसे है जो अल्प मात्रा मे भी खतरनाक हो सकते हैं। फिर यह नजर भी नही आते हैं। इनके स्पष्ट उदाहरण है पारद, सीसा, सखिया और कुछ कार्बनिक यौगिक पदार्थ (कीटनाशी और अपतृण-नाशी)। इन पदार्थों के उपयोग से मानवीय जीवन के जोखिम मे पडने का कोई मामला अभी तक हमारे देश मे देखने मे नही आया है। लेकिन

हम सावधान नही रहे तो निश्चय ही ऐसे मामले सामने आ सकते है।

चुनौती

हम इस चुनौती का सामना कैसे कर सकते है ? सबसे पहले तो अवशेषो का ससाधन कर सकते है ताकि उनमे से खतरनाक अश समाप्त हो जाये। मौजूदा उद्योगो के सामने अभी तक यही वेहतर हल मौजूद है, हालाकि ससाधन की प्रक्रिया मे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से और कोयले या तेल का प्रयोग करना पडता है। यदि यह ससाधन महगा हुआ (जो अक्सर होता है) तो हम नये उद्योग ऐसे स्थानो पर लगा सकते है और पुराने उद्योगो को ऐसे नये स्थलो पर ले जा सकते हैं, जहा अवशेषो को भारी मात्रा मे उपलब्ध जल से मद किया जा सके और जहा इनका प्रभाव मनुष्य-जीवन और वनस्पतियो पर कम से कम पडे। यदि यह सभव न हुआ (अक्सर यह सभव नही होता) तो हमे वाछित अतिम उत्पाद पाने के लिए अग्रिम अनुसधान के माध्यम से ऐसी प्रौद्योगिकी विकसित करनी पडेगी, जिससे उत्पादन करने पर कम खतरनाक परिणाम निकले। यदि हम इस प्रयास मे भी असफल हुए तो हमे उस उद्योग को यथास्थिति मे स्वीकार करके चलना पडेगा। किंतु ऐसी स्थिति अभी नही आयी है। अभी हम इसी आशा से ऐसे आशिक हल खोजने मे लगे हुए है कि इन्हे आशिक स्वीकृति मिल जायेगी।

दूषण की ऐसी गभीर और विस्तृत समस्याए भी उठ खडी हो सकती है, जिन्हे आसानी से समझा भी न जा सके। वे बहुत ही सहज तरीके से पेश आ सकती है और जो काफी अर्से बाद गभीर रूप धारण करती हैं। एक उदाहरण से बात स्पष्ट हो जायेगी। बडे स्तर पर गहन औद्योगीकरण से गधक और नाईट्रोजन की आक्सीकरण गसे भारी मात्रा मे पर्यावरण मे भरती जाती हैं। ये गैसे वर्षा की बूदो मे घुल जाती है और सल्फ्यूरिक तथा नाइट्रिक अम्लो के कणो की सूरत मे नीचे आती है। इस हल्की अम्लमयी वर्षा का प्रभाव मिट्टी की उवरता पर पड सकता है, जो काफी लबे अतराल के बाद दृष्टिगोचर होगा। ऐसी समस्याए वास्तविक रूप लेने पर उस किस्म के दूषण से कही अधिक खतरनाक रूप ले सकती है, जिन पर हम इससे पहले विचार कर चुके है। किंतु फिलहाल हम अभी औद्योगीकरण

के उस दौर मे नही पहुचे है और हमारे कोयले मे गधक का अश भी कम है। फिर हमारे यहा वर्षा केवल चार महीने ही चलती है और आमतौर पर भारी होती है। इसलिए हमारी वर्षा का जल कणिक अश मे ही अम्ल
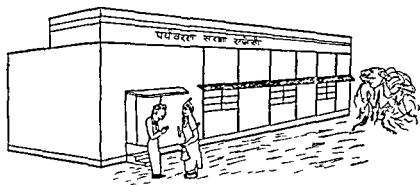
को भूमि पर लायेगा और वह भी बहुत ही घुली स्थिति मे। वर्षा ऋतु मे वायु सचलन की दिशा को ध्यान मे रख कर उद्योगो को सूझबूझ से सही ठिकानो पर लगाने की अभी भी सभावनाए मौजूद है।

हमारे यहा वर्षा चक्र के रूप मे आती है। इससे कुछ लाभ भी हैं और हानिया भी। एक हानि यह है कि शुष्क मौसम मे नदिया मे बहुत कम जल रह जाता है और उस दौरान औद्योगिक अवशेषो का हल्की मात्रा मे विसजन भी जल मे दूषको का भारी सकेंद्रण कर देता है। लाभ यह है कि वर्षा ऋतु मे नदियो मे बाढ आ जाती है और सभी दूषक समूचे बह कर चले जाते है। फलस्वरूप नदी-तल मे इनका धीरे-धीरे जमाव नही हो पाता। फिर भी हमारे लिए असावधान रहना ठीक नही और केवल परिकल्पनाओ पर निभर रहने से काम नही चलने वाला है। जल के नियमित रूप से गुणात्मक विश्लेषण के लिए देशव्यापी व्यवस्था की आवश्यकता है। वैसे इस दिशा मे पहले से भी कुछ हद तक काम चल रहा है।

औद्योगिक उत्पाद

कुछ औद्योगिक उत्पादो का न केवल उत्पादन, बल्कि उनका इस्तेमाल

भी दूषण की समस्याए वडी कर सकता है। कुछेक स्थलो को छोडकर शेष देश इस तरह के दूषण से अधिक ग्रस्त नही है। फिलहाल तो नही ही हैं। शायद आगे भी न हो। औद्योगिक उत्पादो का राष्ट्रीय स्तर पर उपयोग अभी काफी कम हे। किंतु हमे दो औद्योगिक उत्पादो पर नजर रखनी होगी। वे है रासायनिक खादे और कीटनाशी दवाईया। भविष्य मे इनका उपयोग वढने की सभावनाए है। कुछ स्थितियो मे यह दोनो ही वस्तुए जल पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सक्ती हे। कीटनाशी दवाईया तो खाद्य पदार्थो मे ही प्रवेश कर जाती है। किंतु आर्थिक मजबूरियो के कारण हम इन दोनो का कम से कम प्रयोग ही कर पा रहे हे और पारपरिक जैवजनिक सामग्री के उपयोग की तरफ ही पलट रहे है। इसलिए यह समस्या कभी भी चिंताजनक रूप तक नही पहुचेगी। फिर भी हमारे सामने कौन से विकल्प हैं ? आज की प्रौद्योगिकी से हम अपनी भूमि से पर्याप्त अन्न प्राप्त करना चाहते है तो हमे कुछ उद्योगो को जारी रखना पडेगा। हमे कृषि मे रासायनिक उवरको और कीटनाशी दवाईयो का उपयोग करना ही पडेगा। सिचाई कार्यो के निर्माण और खेतीहर उपकरणो के उत्पादन के लिए हमे इस्पात, सीमेट, तेल, कोयले और दूसरी वस्तुओ की आवश्यकता है। इसलिए हमे कारखाने भी चाहिए और साथ ही इन कारखानो से उत्पन्न स्थानीय स्मस्याओ को भी हल करना पडेगा। इस मामले में अभी कोई तात्कालिक गतिविरोध पैदा नही होने वाला है।

कुछ औद्योगिक उत्पादो की उत्पादन प्रक्रिया कारखाने मे काम करने वाले श्रमिको के स्वास्थ्य के लिए वडी घातक वतायी जाती है। कुछ समद्ध देश इन वस्तुओ का अपने यहा उत्पान करने के वजाय इन्हे विदेश से आयात करते हैं। अच्छा लाभ कमाने के लालच मे इन वस्तुओ का निर्यात करना और अपने श्रमिको के स्वास्थ्य की परवाह न करना निदनीय काय है। सौभाग्य से इस तरह के उत्पादन काय अभी वडे स्तर पर नही ह। भविष्य मे हमे इनका प्रमार रोकना होगा और धीरे-धीरे ऐसी वस्तुओ का उत्पादन वद करने का प्रयत्न करना पडेगा।

सीमित विकल्प

सभी के लिए पर्याप्त मात्रा मे पोषक खाद्य हमारा तात्कालिक लक्ष्य

है। इसके लिए हमे अन्न के उत्पादन के आज के स्तर को ऊपर उठाना होगा और इसे बढती हुई जनसख्या के साथ कदम-ब कदम बनाये रखना पडेगा। ऐसी स्थिति मे कुछ उद्योगो के विस्तार से नही बचा जा सकता। किंतु इस बारे मे बडी सूझ-बूझ से काम लेना होगा कि इन उद्योगो को कहा लगाया जाये, इनके लिए कौन सी उत्पादन प्रणालिया चुनी जाये और अप-शेषो का ससाधन कैसे किया जाये। ससाधन की समस्या पहले इतनी अहम नही थी, लेकिन अब है। यह प्रयत्न कुछ समय तक और जारी रखा जा सकता है, लेकिन अनिश्चित काल तक नही। अत मे अनेक गभीर प्रतिबधो के कारण असफलताए और त्रुटिया घटित होने लगेगी। ऊर्जा और कृषि के क्षेत्र मे विज्ञान के किसी नये विकास से ही इनसे छुटकारा मिल सकता है। यदि सस्ती ऊर्जा उपलब्ध हो सके तो सभी कुछ सभव है। किंतु यदि ऊर्जा के मामले मे दिक्कत बढती गयी तो नियति की शरण मे जाने के अलावा कोई चारा नही रहेगा। वैसे अभी आशा शेष है। दूषण रहित वैकल्पिक प्रौद्योगिकी के विकास पर अनुसधान काय चल रहे हे। सौर, वायु, समुद्री और भू-उष्मा ऊर्जा के विकास की सभावनाओ पर खोजकाय चल रहा है। इसी प्रकार कृषि और अपशेष ससाधन की नई जैविक सभावनाओ की भी खोज की जा रही है। लेकिन अभी तक यह सतही स्तर पर ही हैं। किसी भी सभावना ने सफलता का मुह नही देखा है। लेकिन सघर्ष जारी है। औद्योगिक ऊर्जा के लिए अभी तो कोयले और तेल ही प्रमुख साधन बने हुए हैं।

इस बीच हमे अपनी कोशिशो को, दृश्य (तात्कालिक) और अदृश्य (दीर्घ अवधिकी) समस्याओ की गभीरता और विस्तार का पता लगाने और इन्हे हल करने के लिए, आवश्यक तथा सूझ-बूझ पूण पूर्वोपायो पर अमल करने के इद गिर्द केंद्रित करना होगा। अनिवाय उद्योगो का विस्तार रोकने की स्थिति मे हम कतई नही हैं। वैसे हम ऐसा कारखाना अवश्य बद कर सकते हैं, जो कुत्तो के लिए जूते तैयार करता हो। ऐसा कारखाना बद करना आसान है, क्योकि अभी यह लगाया ही नही गया है। लेकिन हमने सिद्धात अवश्य प्रस्तुत कर दिया है कि अनावश्यक वस्तुओ का कारखाना हमारे देश मे नही चल सकता। किंतु यह निणय करना भी बडी कष्टसाध्य स्थिति पैदा करेगा कि कौन सा उद्योग अधिक अनावश्यक है। किंतु अतत हम

प्रकार के निर्णय लेने से अपने को नही बचा सकेंगे। क्या गुड साफ करके चीनी बनायें या गुड से काम चलाया जा सकता है? एक स्थिति मे इस तरह के प्रश्न पूछना आवश्यक हो जायेगा और इसके उत्तर के अनुसार हमें कारवाई करनी पडेगी। चूकि हमारा प्रयत्न सयत्न हो इसलिए सुधार के उपाय भी सयत्न होगे (और होने भी चाहिए)। यदि हम समस्या के प्रति कोई प्रतिक्रिया व्यक्त न करके चलते रहे तो स्थिति किसी दिन चरम रूप धारण कर लेगी और कष्टकर बन जायेगी। किंतु आवश्यक नही कि वह स्थिति महाविपत्ति का रूप धारण करे। अधिकतर प्रणालिया स्वचालित समायोजन और नियत्रण की क्षमता रखती हैं। जब स्थिति चरम बिंदु को छूने लगती है तो ये प्रक्रियाए स्वचालित हो जाती हैं। हम अपने सभी कार्यकलापो मे हर समय ऐसी प्रक्रियाओ को सक्रिय देखते है।

सार

हमे अपनी आँखे खुली और मस्तिष्क सचेत रखना होगा ताकि आगे के खतरो को पहले से देखने मे चूक न कर जाये। प्रौद्योगिकी हमने बाहर से ली है, इसी तरह इलाज के उपाय भी बाहर से ले सकते है और जहा भी तथा जब भी आवश्यक हो, अपनी आवश्यकताओ के अनुरूप उन्हे ढाला जा सकता है। इससे अल्पकालिक कामचलाऊ हल तो उपलब्ध हो जायेंगे। फिलहाल इसी की आवश्यकता है, क्योकि दीर्घ अवधि के विकल्पो के बारे मे सोच-विचार करने और अपनी स्थिति को उनके अनुरूप ढालने के लिए समय चाहिए। ऊर्जा-समस्या क्या रुख पकडती है, इसी पर बहुत-सी बाते निर्भर करेंगी।

10
योजना

तदथ आधार पर जल साधनो का विकास, नियत्रण और उपयोग लबे समय तक नही चल सकता। अतत विकास योजना के अलग अलग हिस्से एक-दूसरे के रास्ते मे आने लगेंगे। इसलिए एक समेकित योजना तैयार करना अति आवश्यक है। किंतु यह कार्य है बहुत जटिल। इसके कुछ पहलुओ पर हम मोटे रूप मे पहले ही विचार कर चुके है। लेकिन आजकल चलन इस बात का है कि योजना के प्रति भी 'समग्र दृष्टि' अपनायी जाये। इसका अथ हुआ कि जल के उपयोग और नियत्रण के बारे मे कोई भी निणय लेते या योजना बनाते समय सबधित सभी पक्षो और कारणो पर विचार कर लेना चाहिए। किसी भी नयी परियोजना (जल उपयोग की मौजूदा योजना मे किसी भी तरह के सशोधन) पर काम प्रारभ करने से पहले हमें उसे एक बडी योजना के अग के रूप देखना होगा, जिसके अतगत जल, भूमि और ऊर्जा जसे तकनीकी कारको के अलावा सामाजिक, आर्थिक और परिस्थितिकी सबधी कारको पर भी पूरी तरह से विचार करना चाहिए। बडी योजना समूची नदी-घाटी की विस्तृत और दीर्घावधि की योजना होनी चाहिए। नही, यह योजना समूचे देश को ध्यान मे रख कर तैयार की जानी चाहिए, जिसके अतर्गत विभिन्न नदी घाटियो के बीच जल और अय साधनो के पारस्परिक आदान-प्रदान के लिए भी स्थान होना चाहिए। इतना ही काफी नही। सभी सभावित योजनाओ से सबधित कार्यो के विकल्प भी तैयार किये जाने चाहिए और उनकी विस्तृत पडताल कर लेनी चाहिए।

भावी आवश्यकताओ के अनुमानित आँकडे तैयार किये जाने चाहिए। जिन प्रतिबधो के अतर्गत हमे कार्य करना होगा, उनकी रूपरेखा भी तयार की जानी चाहिए। इसके बाद अलग-अलग कार्यो (जैसे नहरो का निर्माण, नल-कूपो की ड्रिलिग) की अग्रताओ और समय-तालिकाओ की जाच की जानी चाहिए और वृहद योजना मे इन्हे सही जगह रखना चाहिए। यह सारा व्यापार कुछ जटिल प्रतीत हो सकता है और है भी। किंतु इस प्रकार की योजना तैयार की जा सकती है, कागजो पर तो निश्चय ही (हालाकि इसका कार्यान्वियन भिन्न मामला है)। योजना तैयार करने मे अपनाया जाने वाला यह दृष्टिकोण एकदम नवीन नही है। योजना तैयार करने वाले परस्पर विरोधी कारको और पक्षो का भी हमेशा ध्यान रखते है और योजना मे सभी बातो को अपने ज्ञान के आधार पर शामिल करते हैं। किंतु 'समग्र दृष्टि' परिमाणात्मक आधार इन बातो को योजना मे लाने का प्रयत्न करती है और वह भी स्पष्ट रूप से तटस्थ हो कर।

जल (या किसी भी वस्तु) के सबध मे योजना तैयार करना गृहिणी की उस योजना से कतई भिन्न नही है जो वह अपनी गृहस्थी का प्रबध करते समय हर समय तैयार करती रहती है। वह अनेक कारको, परिवतना, सभावनाओ, प्रासगिक तत्वो और गौण बातो का ख्याल रखती है। वह अपने और अपने परिवार के सदस्यो के लिए लक्ष्योन्मुख कार्यो की दिशाए निधारित करती है। कार्यो की अग्रताए और समय तय करती है। वह परस्पर भिन्न मागो के लिए गुजाईश रखती है, अनुमान लगाती और विभिन्न विकल्प खुले रखती है। कभी-कभी वह गलतिया भी करती है और बीच मे उन्हे दुरुस्त करने की कोशिश भी करती है। कभी-कभी वह अवास्तविक लक्ष्य सामने रखती है और निराशा का मुह देखती है। किंतु उसकी सभी वास्तविक योजनाए सफल होती है। जल प्रबध का अनुभव भी अनिवाय रूप से इसी प्रकार का हे। अतर केवल इतना है कि पूरी प्रणाली की समूची जटिलता पर परिमाणात्मक दृष्टि से विचार करने का प्रयत्न किया जाता है। वेशक यह प्रयत्न सराहनीय है, किंतु "समग्र दृष्टि" भी सोचे जा सकने वाले सभी कारको को ध्यान मे नही रख सकती, चाहे सगणना कितनी ही अत्याधुनिक और सगणक कितना ही शक्तिशाली क्यो न हो। इसका कारण यह है कि जल हमारे जीवन के सभी

पक्षो को सभी तरह से प्रभावित करता है और इस से जुडे सभावित परिवतनशील कारको की सख्या वहुत अधिक है। फिर यह भी निश्चय से नही कहा जा सकता कि हमने सभी सभावित तकनीकी कारको को योजना मे शामिल कर लिया है। कभी-कभी कुछ असबद्ध, अभी तक अज्ञात कारक परियोजना के कार्यान्वयन को अहम तरीके से प्रभावित करने लगते है और समूची योजना को खतरे मे डाल देते है। परिस्थितिकीय असतुलन से सवध कुछ कारक लवी अवधि के वाद उभर कर सामने आने लगते है। इसलिए
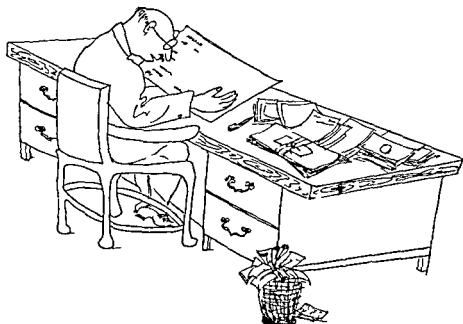
हमारे सगणक की कुछ अबूझ पहेलियो मे से ही यह कोई पहेली होनी चाहिए।

'समग्र दृष्टि" योजना की पूणता और सफलता की गारटी नही। किंतु यह अधूरी योजना या कोई योजना न बनाने से निश्चय ही बेहतर है। इस प्रणाली मे कौन-कौन से कारक सक्रिय होते हैं, उनका परिचय देने के लिए उनमे से कुछ की आगे चर्चा की जाती है।

वर्षा, काल और स्थान मे इसका वितरण, वादलो के कृत्रिम वीजारोपण मे सभावित सशोधन, नदी प्रवाह तथा उससे जडे परिवतनशील कारक, उनका नदी प्रवाह से सवध, भूमि और उसका उपयोग, मिट्टी की किस्मे, उन किस्मो

के नमी-धारण गुण, विभिन्न फसलो के लिए उनकी उपयुक्तता, लोग, उनकी कुशलता और सस्कृति, प्रादेशिक आर्थिक-तत्र और वित्तीय नीति, पशु और उनके उपयोग, उद्योग, कृषि आधारित उद्योग और अन्य, प्रचलित सिंचाई प्रणाली और उसमे किये गये सुधार, उपलब्ध ऊर्जा का पैटर्न, आतरिक जल परिवहन और मत्स्य पालन केंद्र, परिस्थितिकीय सतुलन। यह सभी कारक (और अन्य भी) एक प्रणाली या तत्र का अग हैं। इनमे से किसी एक मे परिवर्तन होने पर शेष सभी कारक प्रभावित होते है। यह प्रणाली वडी ही जटिल है। यह काय त्वरित गति वाले सगणक की सहायता से केवल विशेषज्ञ ही सपन्न कर सकते है। उन्हे भी तकनीकी और नीति सबधी मामलो से सबधित अहम प्रश्नो तक अपने को सीमित रखना पडता है और इन प्रश्नो के उत्तर मालूम करने मे आधुनिक सगणक की सहायता लेनी पडती है। सही निर्णय लेने मे यह उत्तर बडे सहायक सिद्ध हो सकते है। किंतु इन उत्तरो को किसी विशेष नीति के लिए "अतिम आदेश" नही समझना चाहिए। इसका कारण यह है कि ये उत्तर किन्ही अपरिहाय सीमाओ के भीतर रहते हुए प्राप्त किये गये हैं। कभी कभी सगणक मे डाली जाने वाली तकनीकी सामग्री पूण नही होती या त्रुटिपूण होती है। फलस्वरूप अनुमानित आकडो से काम चलाना पडता है। लेकिन यह खेल जारी रखना होगा, क्योकि इसे खेलते-खेलते हम प्राणाली को और अच्छी तरह से समझने लगते है और हो सकता है कि कुछ नई दिशाए हमे दीखने लगे।

हर काय के लिए सबसे पहली जरूरत 'प्रणाली विश्लेषण' नही है, लेकिन यह विश्लेषण वाछनीय है। किसी भी विशेष काय को किस तरह किया जाये, इस विषय मे अक्सर काफी छूट रहती हे। फिर स्थिति भी ऐसी पेश आ सकती है कि काय को सीधे करने के अलावा कोई चारा नही रहता। वास्तव मे हम अभी तक इसी तरह से काम करते आये है और आगे भी शायद इसी तरह काम करते रहेगे। उदाहरण के लिए, हम गगा घाटी मे विशाखन नहरे भी बनाते रहेंगे और सिंचाई के लिए भूमिगत जल के उपयोग के साधनो को भी काम मे लाते रहेंगे। दोनो ही स्थितियो मे काफी गुजाईश बची हुई है। वैसे भी दोनो वाछनीय भी हैं और व्यावहारिक भी। फिलहाल इन दोनो के बारे मे विचार करते समय इनके सामान्य पक्षो को ही लिया जायेगा। किंतु दोनो साधन एक ही प्रणाली का अग होने और इनके पारस्परिक घात-प्रति-

घात के कारण एक समय वाद सघप उभरने शुरू हो जायेगे। तब हमे एक साधन से दूसरे साधन को तरजीह देकर अपने विकल्प को सीमित रखने के वारे मे तटस्थ निणय लेना पडेगा। यह निणय उस स्थानीय और सपूण स्थिति पर विचार करके लिया जायेगा, जिसे वहुत से कारक प्रभावित कर रहे होगे। समझदारी यही है कि अपेक्षित सूचनाए इकट्ठी की जाये और काय प्रणाली का विकास अभी कर लिया जाये। कार्य प्रणाली विकसित होते ही अधिक से अधिक (इष्टतम) वाछित लाभ पाने के लिए मौजूदा जलपूर्ति पर इसे लागू किया जाये।

आजकल 2000 ई० के लिए सभावित आवश्यकताओ का अनुमान लगाने का प्रचलन है और फिर इन्ही भावी आवश्यकताओ के अनुसार योजना तैयार की जाती है। शुरुआत जनसख्या से की जाती है। 2000 ई० मे जनसख्या (विभिन्न परिकल्पनाओ के अनुसार) कितनी होगी ? उसकी जल और अन्न की आवश्यकताए कितनी होगी ? इन आवश्यकताओ की पूर्ति कैसे की जायेगी ? परिस्थितिकी पर इसके क्या प्रभाव होगे ? इसी तरह के प्रश्नो के उत्तर खोजे जाते है और खोजे भी जाने चाहिए। ऐसा इसलिए नही कि यह सभी परिकल्पनाए सही निकलेगी, बल्कि इसलिए कि इस तरह कुछ समस्याए स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आयेगी और तब उन्हे हल करने के लिए कदम उठाये जा सकते है।

सभी योजनाए और परिकल्पनाए उस समय असफल हो जाती है जब कोई अप्रत्याशित घटना उन्हे वुरी तरह से प्रभावित करने लगती है। वैसे इस तरह की सभावना हर समय वनी रहती है, चाहे आप योजना बनाये या नही।

सार

समग्र दृष्टि से योजना वनाना वाछनीय है। किंतु इस वात का ध्यान रखना चाहिए कि योजना बनाने की प्रक्रिया ही इतनी वोझिल न हो जाये कि योजना का कोई स्पष्ट रूप ही न उभर पाये। साथ ही इसकी लागत भी इतनी अधिक नही होनी चाहिए कि वह योजना के कार्यान्वयन की लागत को ही खाने लगे।

11

अनुसधान और अन्वेषण

जल का उपयोग अनगिनत और परस्पर विपरीत उद्देश्यो के लिए किया जाता है। फलस्वरूप इससे सबधित अनुसधान और अन्वेषण का क्षेत्र भी अत्यत विस्तत है। किंतु इसके सगठित अनुसधान के अतगत विकास, नियत्रण और उपयोग सबधी मुख्य समस्यायें ही आती है।

जल सबधी कोई भी सार्थक अनुसधान या अन्वेषण, जो चाहे बुनियादी हो या प्रायोगिक या नेमी, हमारे लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकता है, क्योकि मुख्य रूप से कृषि पर आधारित हमारी अर्थव्यवस्था जल पर ही निभर करती है।

बुनियादी अनुसधान से फसल-जल-मिट्टी-जलवायु तत्र को समझा जा सकता है। इस जानकारी के आधार पर नये विचारो और नये कार्यो की दिशाए खुल सकती है और फलस्वरूप मौजूदा सीमाओ के अतगत अधिक परिमाण मे स्थायी उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। बुनियादी अनुसधान मे किया गया श्रम तुरत तो फल नही देता, किन्तु आमतौर पर आगे चल कर कई गुना फल देता है।

द्रव इजीनियरी और मदा-यान्त्रिकी के क्षेत्र मे बुनियादी अनुसधान के अतगत जलप्रवाह की गति और जिस माध्यम मे से या उसके ऊपर से जल वह रहा हो, उसके और जल के बीच क्रिया प्रतिक्रिया का भी अध्ययन किया जाता है और यह विषय जलविदयुत और जलपरिवहन से जुडे हैं। अभी तक हमने उपलब्ध सभाव्य जलविद्युत (लगभग 40,000 मेगावाट) का

केवल 20 प्रतिशत ही विकसित किया है। इस दिशा मे हमे अभी काफी कुछ करना है। प्रणाली और अभियात्रिकी की अच्छी बुनियादी समझ से हम लागत कम कर सकते है और गलतियो से वच सकते है।

प्रायोगिक क्षेत्र मे हमारा मुख्य सवध व्यावहारिक समस्याओ से है, जो खूव अच्छी तरह से परिभाषित है। समस्या केवल छोटे प्रदेशो से सवधित हो सकती है, किंतु उसका हल महत्त्वपूण आर्थिक प्रभाव पैदा कर सकता है। उदाहरणाथ, यदि सिंचाई प्रौद्योगिकी मे कोई नया सुधार होता है और फल-स्वरूप लागत मे वचत होती है तो इसे छोटे प्रदेश मे लागू करने पर भारी वचत की जा सकती है। अपेक्षाकृत सस्ती सामग्री, श्रम मे वचत, वेहतर उपकरणो के प्रारभिक प्रयोग से प्रादेशिक अर्थ-व्यवस्था पर जवरदस्त प्रभाव पड सकता है। भू सरक्षा-नियत्रण और अवसादन की ऐसी नयी पद्धतियो के विकास की आज वहुत जरूरत है, जो हमारे सामाजिक तथा भौतिक परिवेश के अनुकूल हो।

सभी विकास परियोजनाओ के लिए नेमी किस्म के आकडे इकट्ठे करने की आवश्यकता होती है। यद्यपि यह कार्य इतना उत्साहजनक नही होता, किंतु है वेहद महत्त्वपूण। यदि यह आकडे उपलब्ध न हो तो किसी भी परि-योजना की योजना और कार्यान्वयन पूरी तरह से असफल हो सकते ह। फलस्वरूप परियोजना कम या अधिक क्षमता स्तर पर रह जायेगी। वाध निर्माण, भूमिगत जल विकास, वाढ नियत्रण, वाढ पूवसूचना, नदी-प्रशिक्षण और गहन खेती जैसी विभिन्न परियोजनाओ को हाथ मे लेने के लिए पहले जल सवधी पूरे आकडो की आवश्यकता होती है। यह आकडे वर्षा, नदी विसजन, भूमिगत जल स्तर, जल की अतर्जात स्थिति आदि से सवधित होते है। ये आकडे एकत्र करने की पद्धतियो मे सुधार और सरलीकरण किया जा सकता है। आकडे काफी लवी अवधि के होने चाहिए। इस दिशा मे भी हमारा प्रयत्न जारी रहता है।

जिस परियोजना विशेष पर हम काम करना चाहते हैं, उसकी आवश्य-कताओ के अनुसार एकत्र आकडो का विश्लेपण और ससाधन किया जाता है। इसके लिए विशेष ज्ञान आवश्यक है। उदाहरणाथ, मान लीजिए हम निर्माण से पहले किसी वाध की ऊचाई तय करना चाहते ह। ऊचाई वढाने पर वाध का ऊपरी भाग लवा होता जाता है। साथ ही ऊचे वाध के पूरे

ढाचे की मोटाई भी बढ जायेगी । इस तरह ऊचाई मे मामूली सी वृद्धि आवश्यक साधनो मे भी जरा तेजी से वृद्धि होगी । फिर इतना अधिक ऊ बाध और बडा जलाशय बनाने से कोई लाभ नही, जो कभी-कभार ही पू भर सके । दूसरी तरफ हमे इतना बौना बाध भी नही बनाना है कि हर व उसमे से भारी परिमाण मे पानी ऊपर से बहकर निकल जाये । इसलिए ह ऐसा सतुलित बाध तैयार करना चाहिए कि उसमे काफी बडे परिमा (औसतन) मे जल रोका जा सके और लागत मे भी अनावश्यक रूप वृद्धि न हो । यदि थोडा-बहुत जल उसमे से कभी-कभार निकल भी जा तो कोई हर्ज नही । इसके लिए आवश्यक है कि वर्षा और विसर्जन सबध आकडो और प्राप्त होने वाले आर्थिक लाभो का विशेषज्ञ द्वारा विश्लेषण कराया जाये ।

बाध को क्षति पहुचाये बिना उसके ऊपर से पानी बह जाने देने के लि विशेष प्रबध करना जरूरी हो जाता है, जैसे बाध-निर्माण मे ही उत्प्लव मार्ग या साइफन की व्यवस्था करनी होगी । इन्हे बनाने मे बहुत लागत लगती है, इसलिए इन्हे बाध के डिजाइन मे आवश्यकता से अधिक शामिल नही करना चाहिए। इसका एक उपाय यह हो सकता है कि हम पहले से उस बाढ-जल की तीव्रता का अनुमान लगाने की स्थिति मे हो, जो समय-समय पर जलाशय मे भर सकता है । इसके लिए विशेषज्ञ द्वारा वर्षा और विसजन सबधी आकडो के विश्लेषण की आवश्यकता होगी ।

जलाशय और उससे जुडे निर्माण-काय तैयार होने के बाद हमे जलाशय-प्रचालन की सूझ-बूझ पूण नीति तैयार करनी होगी ताकि अधिकतम लाभ प्राप्त किये जा सकें । जलाशय प्रचालन के तीन उद्देश्य होते हैं सिंचाई, बिजली उत्पादन और बाढ-नियत्रण । ये तीनो एक-दूसरे से टकराते है और तीनो की आवश्यकताए अलग-अलग है ।

(1) सिंचाई के लिए, वर्षा ऋतु के दौरान जलाशय मे अधिक से अधिक जल एकत्र करना सबसे अच्छा रहता है ताकि उसका उपयोग बाद मे किया जा सके । वर्षा के मौसम मे बाध मे से नहरो में बहुत ही कम पानी छोडना पडता है ताकि खरीफ की फसल की सिंचाई की आवश्यकता पूरी की जा सके । बाद मे फसलो की सिंचाई आवश्यकता

के अनुसार ही जल विसजन कम या अधिक मात्रा मे करना होता है।

(2) बिजली उत्पादन के लिए जलाशय मे हर समय अधिक से अधिक जल रखना और बिजली उत्पादन की माग के अनुसार ही जल का विसर्जन करना सबसे अच्छा रहता है। बिजली उत्पादन और सिंचाई के लिए जल की आवश्यकता का एक ही समय पैदा होना जरूरी नही है।

(3) बाढ नियत्रण के लिए हमे वर्षा ऋतु मे जलाशय का कुछ भाग हमेशा खाली रखना चाहिए ताकि बाढ के जल को रोका जा सके। इसलिए वर्षा अतरालो के बीच जलाशय मे से पानी छोडना ही पडेगा ताकि वह कभी भी पूरा न भरा रहे।

परस्पर भिन्न आवश्यकताओ और विभिन्न समय पर बाढ के जल के सभावित रेलो के कुछ अनुमानित आकडो का ध्यान रखते हुए प्रभारी अभियता जल विसजन की नीति तैयार करता है। ऊपर बतायी गई तीनो आवश्यकताए आशिक रूप से एक-दूसरे की विरोधी है, इसलिए अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए इनमे एक सतुलन कायम करना होगा। किंतु इसके लिए आकडो का विश्लेषण विशेषज्ञ द्वारा किया जाना चाहिए।

कुछ परियोजनाओ के लिए जल सबधी विशेष आकडे एकत्र करने के अलावा उस प्रदेश की भूमि तथा भू-आकृति का भी सर्वेक्षण करना पड सकता है। उस स्थिति मे वास्तविक इजीनियरी तफसीलो के लिए उचित डिजाइन तैयार करने पडेंगे। इसके लिए परियोजना के छोटे-छोटे माडलो का अक्सर इस्तेमाल किया जाता है। ऐसा करना केवल सुरक्षा और विश्वसनीयता की दृष्टि से ही आवश्यक नही, बल्कि डिजाइन मे अनावश्यक तफसील और श्रम तथा अर्थ की अनावश्यक हानि से बचने के लिए जरूरी है।

यही बाते नहरो और जल मार्गो की खुदाई और उनमे पलस्तर करने के कार्यो पर भी लागू होती है। इनके निर्माण के किसी भी पक्ष मे सामग्री से सही परिवतन से श्रम और सामग्री की भारी बचत हो जाती है। सिंचाई के क्षेत्र मे अनुसधान निरतर जारी रखना होगा, क्योकि देश का बहुत कुछ इसी पर टिका है।

दूषण के विभिन्न रूपो का पता लगाने, उनका मूल्याकन और नि[illegible]

करने की दिशा मे भी कुछ प्रयत्न आवश्यक है। अपशिष्ट जल को ससाधन द्वारा फिर से उपयोग मे लाने की पद्धतियो का भी विकास करना होगा। यह क्षेत्र अनुसधान के लिए एकदम खुला है। विद्युत और सगणक के अनुरूपी माडलो की सहायता से जल-प्रणालियो की प्रवृत्तियो का अध्ययन, जल विज्ञान मे उपग्रहो की सभावित उपादेयता का अन्वेषण, भावी जल आवश्यकताओ की सगणना और उनकी पूर्ति की पद्धतिया, परिवर्ती परिवतनो के सभावित प्राक्कलन ऐसे क्षेत्र है जिनमे अनुसधान की गहमागहमी है।

अनाकपक और यर्थाथपरक समस्याओ के क्षेत्र म की गयी खोजे कम समय मे ही अधिक लाभप्रद सिद्ध होती ह और इन्ही पर सब से पहले काम शुरू करना चाहिए। विशिष्ट सुविज्ञता और उच्चकोटि की बौद्धिकता की माग करने वाले बुनियादी अनुसधान को भी हम नजरअदाज नही कर सकते, चाहे इससे तुरन्त लाभ न मिलता हो या कोई लाभ दृष्टिगोचर न होता हो। दूरगामी भविष्य के लिए भी तैयारी करना और योजना बनाना जरूरी है।

पहले से निर्माणाधीन परियोजनाओ के वास्तविक काय और प्राप्त लाभो का विश्लेषण करने मे भी कुछ अथशास्त्री और समाजशास्त्री लगे हुए हैं। वे न केवल आर्थिक कारको, बल्कि सामाजिक तथा राजनीतिक लक्ष्यो की रोशनी मे उपलब्ध आकडो का विश्लेषण करते है। यह विश्लेषण बहुत ही लाभकारी है क्योकि इससे कमियो तथा असमानताओ का पता चलता है और उन्हे ठीक करने के लिए कदम उठाने मे इनसे सहायता मिलती है। जल वितरण प्रणाली मे सशोधन-परिवधन, मूल्य निर्धारण नीति मे परिवतन तथा सिंचाई के लिए जल की माग-पूर्ति के बीच असतुलन के कारणो के उन्मूलन से मौजूदा सिंचाई सुविधाओ के और अधिक प्रभावी उपयोग मे बहुत सहायता मिल सकती है।

हाल ही मे अनेक समस्याए उभर कर सामने आयी है और उनके बारे मे लगन से खोज करना जरूरी है। जैसे वननाशन की समस्या, जो इन दिनो बहुत ध्यान खीच रही है। यह है भी उचित, क्योकि वननाशन से वर्षा-जल के बहाव मे तेजी आ जाती है, जिससे भू क्षरण से जलाशयो, नदी-तलो और बदरगाहो मे मिट्टी और गाद जमने की दर बढ जाती है। यह भी अनुमान है कि वननाशन से वर्षा मे भी कमी आ जाती है। वनस्पति आमतौर पर वायु मडल मे जलकण और वाष्पकण छोडती रहती है, इसलिए वनो के

कटने पर यह प्रक्रिया कम हो जाती है और फलस्वरूप वर्षा मे भी कमी आ जाती है। वननाशन का एकमात्र हल वनरोपण है। लेकिन क्या यही एकमात्र हल है ? क्या इतनी प्रभावयुक्त कोई विशिष्ट वनस्पति इसका हल हो सकती है ? यदि वन रोपण अनिवार्य है तो किस प्रकार के वन सबसे अच्छे रहेगे ? क्या हमारी श्रद्धा के पात्र पीपल के पेड के लिए भी वनरोपण मे कोई स्थान होगा ? कोई भी कदम उठायें, बडे स्तर पर इसान द्वारा वनरोपण से नही बचा सकता। खेती के क्षेत्र मे जिस स्तर पर अनुसधान चल रहा है, वनरोपण के क्षेत्र मे भी उसी स्तर के अनुसधान की आवश्यकता है।

अफवाह है कि बाढ और सूखा पहले से अधिक गभीर रूप लेते जा रहे हैं और इनकी आवृत्ति भी बढती जाती है। क्या यह केवल हौआ है या इसके पीछे कोई सचाई है ? यह बात सच है तो इस रुझान को रोकने के लिए कौन से कदम उठाये जा सकते हैं ?

बहुत सी समस्याए गिनाई जा सकती हैं, जिनका वैज्ञानिक दृष्टि से विश्लेषण करना आवश्यक है। देश मे पहले से ही अनेक सगठन और अनुसधान सस्थान कायम है, जो विभिन्न समस्याओ की खोज का काम अपने हाथ मे ले सकते हैं।

विकास काय की आवश्यकता स्पष्ट है। लेकिन नये विचारो, नये सूत्रो और नये आयामो की खोज इससे भी अधिक महत्वपूर्ण है। कोई भी स्थिति पूणतया अधकारमय नही होती।

12

जल मे कौन क्या है?

जल सवधी एक न एक समस्या हममे से सभी के सामने आती रहती है। किंतु सरकार ने जल सवधी वडी समस्याओ को व्यवसायिक स्तर पर निपटाने के लिए अनेक सगठन खडे किये हैं।

हर राज्य का सिंचाई विभाग जल साधनो के विकास, नियत्रण और उपयोग के बारे मे योजनाए तैयार करता है। यही विभाग आवश्यक खोज-कार्य भी करते है और केंद्रीय सरकार से वित्तीय मजूरी ले कर और योजना मजूर करा कर इन परियोजनाओ को मूत रूप भी देते है। राज्यो के सभी सिंचाई विभागो से किसी न किसी प्रकार के अनुसधान-अनुभाग भी जुडे हैं।

केंद्र मे समूचे देश के सपूण विकास कार्य की देखभाल, कृपि एव सिंचाई मत्रालय करता है। विभिन्न परियोजनाओ के प्रस्तावो के तक्नीकी पक्षो की जाच करने के लिए मत्रालय मे एक तक्नीकी प्रखड है, जिसे केंद्रिय जल आयोग कहा जाता है। इनका फील्ड स्टेशन खडकवासला पूना मे केंद्रीय जल और शक्ति अनुसधान केंद्र है, जो परियोजनाओ की वास्तविक यात्रिकी और दूसरे पक्षो की खोज करता है। केंद्रीय भूमिगत जल मडल (कृपि और सिचाई मत्रालय) भूमिगत जल मूल्याकन और सवधित विकास कार्यो मे राज्यो को सलाह और सहायता देता है। सिंचाई आयोग सिंचाई पूर्ति और मूल्याकन करता है और भावी आवश्यकताओ का अनुमान लगाता है। नदी धारा विकास, जलविसजन मापन, बाढ का पूर्वानुमान और चेतावनी देने तथा वाढ नियत्रण जैसे उद्देश्यो के लिए विशेष रूप से अनेक सगठन बनाये

गये है ।

अनेक ऐसे सगठन भी है, जो जल के सिविल अभियान्त्रिकी सबधी पक्षो को देखते है । नगर निगमो के सिविल अभियान्त्रिकी विभाग, जहाजरानी और परिवहन, रेलवे, वन, तक्नीकी सस्थान, कृषि विश्वविद्यालय, अनुसधान सस्थान आदि भी व्यावसायिक आधार पर जलसबधी समस्याओ को निपटाते और उनका अध्ययन करते हैं ।

हाल ही मे राज्य और केंद्रीय स्तर पर कुछ ऐसे सगठन कायम किये गये है जो दूषण सबधी समस्याओ का मूल्याकन करते हे और उस विषय मे सलाह देते है तथा उस पर नियत्रण सबधी तरीके सुझाते हैं । नागपुर का राष्ट्रीय परिवेशी एव अभियान्त्रिकी अनुसधान सस्थान हमारी जलपूर्ति से जुडी परिवेश सबधी तात्कालिक और कठिन समस्याओ से जूझ रहा है ।

पूरे देश मे वर्षा और बर्फबारी मापन का काय अत्यन्त महत्वपूर्ण होते हुए भी अब अपेक्षाकृत नेमी किस्म का बन गया है । इन से सबधित आकडे इकट्ठा करने और उन्ह सुरक्षित रखने का काय भारतीय मौसम विज्ञान विभाग के जिम्मे है । यही विभाग मौसम सबधी रिपोर्ट और चक्रवात सबधी चेतावनिया जारी करता है और मौसम के बारे मे पूव सूचना देने का भी प्रयत्न करता है ।

13

सम्मेलन

जल सबधी विभिन्न विषयो पर हम प्रति वर्ष लगभग आधा दजन सम्मेलनो (विचार गोष्ठियो, कायशालाओ, विचार-मचो आदि) का आयोजन करते है। ये सम्मेलन निश्चय ही ज्ञान और शिक्षा की दृष्टि से महत्वपूण हैं। इसके अलावा ये सम्मेलन भाग लेने वालो को रुटीन कार्यो से मुक्ति दिलाते है और यह परिवतन स्वागत योग्य भी है। इस सबध मे आपत्ति केवल इतनी ह कि इन बैठको मे अक्सर बधे-बधाये लोग बार-बार हिस्सा लेते है। उनके लिए इस तरह का परिवतन अनिवाय होने के साथ-साथ क्या लाभप्रद भी है !

इन सम्मेलनो और विचार-गोष्ठियो का वास्तविक उद्देश्य नई परिकल्प नाओ, नये विकासो और नये अनुभवो के बारे से विचार-विमर्श करना है। इसी के अतगत विचारो का आदान प्रदान, नये तथ्यो का पारस्परिक मिलान करना और नये सभावित प्रयासो की जानकारी देना भी आ जाता है। इन गोष्ठियो मे कुछ हद तक ऐसा होता भी है। इनमे भाग लेने वाले कुछ विशेपज्ञ नयी तकनीकी जानकारी और नये हल पेश करते है। वसे हर दो महीने बाद नये विचारा, नये निष्कर्षों या नये विकासो की उम्मीद रखना भी ज्यादती होगी। इसलिए इन सम्मेलनो मे काफी भाषण भी सुनने को मिलते है। लोकप्रिय समाचारपत्रो को अपनी खपत के लिए तो बधी बधायी ठेठ भाषा मे सामान्य तथ्य और उक्तियाँ इन सम्मेलनो मे बहुतायत से मिल जाती हैं। कभी कभी ऐसा प्रभाव उत्पन्न किया जाता है कि

समस्या का तात्कालिक हल सामने आ गया है और पारस्परिक भिन्न आवश्यकताओ की पूर्ति की जा सकती है। बडे ही अस्पष्ट और भारी भरकम शब्दो मे इन का विवरण प्रस्तुत किया गया होता है। इन बैठको की एक और विशेष बात यह है कि इन मे तरह-तरह के विनाश की भविष्यवाणिया की जाती हैं। शायद समस्या के कुछ विशेष पहलुओ की तरफ ध्यान खेचने के लिए ऐसा किया जाता है।

दूसरी तरफ विशेष सीमित विषयो पर सुआयोजित विचार गोष्ठियो को प्रशसनीय सफलता भी मिलती है। अधिकाश सम्मेलनो मे मुख्य उद्देश्यो की पूर्ति आशिक रूप से ही हो पाती है। इनका कुछ शिक्षात्मक मूल्य अवश्य है। इसलिए इनकी सख्या बढे तो कोई विशेष हानि नही होने वाली है। हम इनका आयोजन करने मे समर्थ प्रतीत होते हैं।

14

चुनौती

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, ज्ञात और प्रचलित प्रौद्योगिकी के सहारे जल का उपयोग 40 एम एच एम से 80 एम एच एम, अर्थात दुगना किया जा सकता है। अगले दशकों मे हमे इतना विकास करना ही होगा। यह अत्यत आवश्यक है। जल सबधी कानून मे भी कुछ सशोधन आवश्यक है। तभी विकास तेजी से और सही रूप मे सभव हो सकेगा। सगठनात्मक ढाचे मे भी कुछ परिवतन करने पड सकते है। किंतु विकास का यह लक्ष्य, 80 एम एच एम निश्चय ही प्राप्त किया जा सकता है। वास्तविक चुनौती 80 एम एच एम के बाद का लक्ष्य प्राप्त करने की है। 80 एम एच एम के लक्ष्य तक पहुचने से पहले ही चुनौती की दिशाए दिखाई देने लगेगी, अर्थात् 2,000 ई० से पहले ही। यह वही तारीख है, जिसकी आजकल खूब चर्चा है। पाच *भिन्न-भिन्न लक्ष्य हैं, जो अपने मे चुनौतिया हैं और इन्हे हम* स्वीकार कर सकते हैं। इनका उल्लेख पहले भी किया जा चुका है। एक बार फिर से उनका उल्लेख किया जाता है।

(1) वर्षा का दीर्घावधि पूर्वानुमान (एक सप्ताह या उससे पहले)। इससे सिचाई की मौजूदा सुविधाओ के प्रभावी उपयोग मे सुधार सभव है।
(2) वर्षा-चक्र मे सशोधन के लिए व्यवहार्य प्रौद्योगिकी का विकास।
(3) *ब्रह्मपुत्र के अतिरेक जल का उपयोग और उसे शुष्क क्षेत्रो तक* पहुचाना।
(4) पश्चिमी घाट की अनेक नदियो के अतिरेक जल का उपयोग।

(5) गगा के अतिरेक जल का उपयोग । जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है, इस दिशा मे नई पद्धितयो के विकास पर काम किया जा रहा है और इनके विकसित होने पर ऊपर बताये गये पाचो लक्ष्य प्राप्त किये जा सकते है । इसलिए यह कोई ऐसी चुनौती नही है, जिससे निपटा न जा सकता हो । वास्तविक चुनौती का सामना तब होगा जब इन पर अमल किया जायेगा ।

उपरोक्त विकास से उत्पन्न होने वाली परिस्थितिकीय समस्याओ पर भी नियत्रण रखना होगा ।

इस चुनौती का सामना बौद्धिक, विकासात्मक और कार्यान्वियनात्मक स्तर पर किये जाने की आवश्यकता है। आज की युवा पीढी को इसे स्वीकार करने के लिए आगे आना होगा । बेहतर है कि वह इसे दाय रूप मे स्वीकार करने लगे ।

टिप्पणी मुद्रण की भूल से पुस्तक के पहले 48 पृष्ठो के बायें पृष्ठो पर पुस्तक का शीर्षक हमारे जल साधन के स्थान पर हमारे जल स्रोत मुद्रित हो गया है ।